आदर्श उपकार

(प्रेरणाप्रद सत्य घटनाएँ)

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

आदर्श उपकार

[पढ़ो, समझो और करो]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

मनुष्यके जीवनमें सुख-दुःख, लाभ-हानि, संयोग-वियोगके सुखदायी और दुःखदायी क्षण प्रारब्धानुसार रात-दिनके चक्रकी तरह आते और जाते रहते हैं। परंतु प्रतिकूल और संकटपूर्ण परिस्थितियोंमें ही व्यक्तिके धैर्य एवं भगवान्‌के प्रति श्रद्धा-विश्वाससहित उसके आस्थाकी सच्ची परीक्षा होती है। देखा जाय तो जीवनके सच्चे उत्कर्ष और उसके अभ्युदयकी सही दिशा संकटपूर्ण घड़ियोंसे गुजरने और विपत्तियोंके तापसे तपनेके बाद ही मिलती है।

जिस प्रकार अपने ऊपर आये हुए कष्ट और विपत्तिको सहजतासे सहन करना अथवा उसे भगवान्‌का भेजा हुआ उपहार या उनका प्रसाद मानकर दुःखी न होना उत्तम है, उसी प्रकार परदुःखसे दुःखी और परसुखसे सुखी होना और भी अधिक उत्तम है। बिना किसी स्वार्थ और कामनाके दूसरोंके प्रति किये गये उपकारको भी बड़ा महत्त्व दिया गया है। परदुःखकातरभावसे किसीके दुःखको मिटानेमें सहायक होना और उसे मिटानेका अपनी सामर्थ्यके अनुसार हर सम्भव प्रयास करना ही मनुष्यत्व है; यह परम धर्म है। गोस्वामीजीने भी श्रीरामचरितमानसमें इसकी पुष्टि की है—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

प्रस्तुत पुस्तक सच्ची और स्वानुभूत उन घटनाओंका संकलन है जो 'कल्याण'में 'पढ़ो, समझो और करो' स्तम्भके अन्तर्गत पहले प्रकाशित हो चुकी हैं। मनुष्यत्वका बोध करानेवाली इसकी सामग्री चरित्रकी ऊँचाइयोंको छूनेवाली और भगवद्विश्वासको बढ़ानेवाली है। रोचक और प्रेरणाप्रद होनेके साथ यह सच्चा मार्ग-दर्शन भी प्रदान करती है। जनहितमें प्रकाशित शिक्षाप्रद और सबके लिये उपयोगी इस सत्य-कथा-संग्रहसे सभी भाई-बहनों और बालकोंको अधिकाधिक लाभ उठाना चाहिये। 'कल्याण' में प्रकाशित यह उपादेय सामग्री पाठकोंके सुविधार्थ भिन्न-भिन्न नाम-शीर्षकसे कुल आठ भागोंमें प्रकाशित की गयी है। सभी भाग सर्वथा पठनीय और जीवनोपयोगी हैं।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

॥ श्रीहरिः ॥

आदर्श उपकार

मैं सुन्दरवती महिला कॉलेजकी छात्रा हूँ। आज मैं एक ऐसे छात्रके विषयमें लिख रही हूँ, जिसके कर्तव्य-पालनपर छात्र-समाजको गौरव होना चाहिये। घटना इस प्रकार है। ता० ९ । २ । ६२ को मैं अपने कॉलेजसे सरस्वतीकी पूजा करके लौट रही थी। भागलपुरस्थित नवयुग विद्यालयके पास एक गुण्डे छात्रने मुझसे छेड़खानी शुरू कर दी। उस गुण्डे छात्रने मुझे जबरदस्ती एक रिक्शेपर बैठाकर ले जाना चाहा। मैं चिल्लाने लगी। उस समय वहाँ कोई नहीं था। भगवान्‌की कृपासे एक छात्र साइकिलपर उस ओरसे निकला। उसने मुझे चिल्लाते देखकर उस गुण्डेको ललकारा। उस गुण्डेने चाकूसे इस छात्रपर प्रहार करना चाहा, परन्तु इस छात्रने, जो उस गुण्डेसे अधिक बलवान् था, उसे खूब पीटा और खुद भी चोट खायी! अन्तमें हारकर वह गुण्डा रिक्शेपर भाग गया। छात्रने पीछा करना चाहा, परन्तु मैंने रोक दिया। फिर भी इसने उसका पीछा साइकिलसे किया। इसके बादका हाल मैं नहीं जान सकी। उस कर्तव्यपरायण छात्रका नाम मुझे उसकी गिरी हुई डायरीसे मिला। उसका शुभ नाम है—'रणजीतकुमार चौधरी'। वे टी० एन० बी० कॉलेज, भागलपुरके Pre-University Ex-Student हैं।

—रूपा

स्वप्नके स्वरूपमें सत्य

वह वृद्ध तो था, उसके बाल भी सफेद थे, पर उसका शरीर न दुबला था, न दुर्बल। जब वह राहपर चलता वैशाखी टेककर, गर्दन झुकाकर, धीरे-धीरे चलता, जैसे किसी वस्तुको ढूँढ़ रहा हो। कोई कभी उससे पूछता कि 'बाबा! क्या ढूँढ़ रहे हो?' तो वह उत्तर देता, रास्ता ढूँढ़ रहा हूँ, बाबा! रास्ता खो गया है।

'कहाँका रास्ता?'

'यही तो मालूम नहीं।' उसके स्वरमें निराशाकी ध्वनि रहती।

'खूब मजेमें ढूँढ़ते जाओ, बाबा! उत्तर सुनायी देता और उसके साथ खखारकी हँसी।'

× × ×

एक चाँदनी रातको, जब कि मैं अपने मकानके बाहर बैठा नीलाकाशकी शोभा देख रहा था, उक्त वृद्ध महोदयको अपने मकानकी ओर आते देखा। रात्रिके समय उनका शुभागमन कुछ आश्चर्यजनक प्रतीत हुआ। निकट पहुँचनेपर मैंने पूछा— क्यों बाबा! इतनी रातको कैसे आये? उसने उत्तर दिया, 'तुमसे कुछ कहना है।'

'इसी रातको?' कल कहते, महाराज!

'नहीं, कलतक मैं भूल जाऊँगा। कल रातको मैंने एक सपना देखा है, वह तुमको सुनाना है।'

'अच्छा तो आप सपना सुनाने आये हैं। मैं समझा कोई गहरी बात होगी।'

'पहले सुनो, फिर कहना गहरी है या नहीं।'

'अच्छा तो सुनाइये।'

तब वृद्धने यों कहा—

'मैंने सपनेमें देखा कि रास्ता ढूँढ़ते-ढूँढ़ते, जैसा कि मैं प्रायः ढूँढ़ा करता हूँ, एक दिन एक गाँवमें पहुँच गया हूँ। गाँव छोटा है। उसमें रहनेवाले भी कम हैं। अधिकतर मकान टूटे-फूटे हैं। बहुतोंपर न छत है, न छप्पर; दीवारोंमें कहीं-कहीं दरवाजे लगे हैं। उस गाँवमें बहुत देरतक मैं भटकता फिरा। मुझको देखते ही लोग जान जाते थे कि मैं वहाँका रहनेवाला नहीं हूँ। मुझको सन्देहयुक्त दृष्टिसे देखते थे। कभी-कभी कोई पूछता भी था कि 'मैं कहाँ जाना चाहता हूँ, किससे मिलना चाहता हूँ।' 'मैं शहरकी तरफ जाना चाहता हूँ', कहनेपर वह मुझे राह तो बता देता; पर चलते-चलते मैं फिर भटक जाता। ऐसे ही घूमते-घूमते मैं एक नदीके किनारे जा पहुँचा। नदी छोटी थी, बहुत गहरी भी नहीं। मैं उस पार जाना चाहता था, पर बहाव इतना तेज था कि नदीमें उतरनेका साहस नहीं हुआ। वहाँपर एक आदमी मिला। उसने पूछा, 'आप कहाँ जाना चाहते हैं?'

मैंने कहा—'मैं जहाँ जाना चाहता हूँ, वहाँका नाम भूल गया हूँ। मुझको युगल-मन्दिरका रास्ता बता देनेपर, वहाँ जाकर मेरे जानेका स्थान कहाँ है, पता लगा लूँगा।'

उसने कुछ नहीं कहा; हँसकर वह चुपचाप चला गया। मैं फिर इधर-उधर फिरता रहा। घूमते-घूमते ऐसी जगह पहुँचा जहाँ केवल दो-एक मकान थे और चारों तरफ खुला हुआ था। वहाँ खड़े-खड़े सोच रहा था कि किधर जाऊँ। इतनेमें एक जीप-गाड़ी आती हुई दिखायी दी। थोड़ी देरमें वह आकर मेरे ही पास

खड़ी हो गयी और बिना किसीसे कुछ कहे मैं तत्काल उसपर बैठ गया। तब मैंने गाड़ीपर बैठे लोगोंको देखा तो उनमें एक सज्जन जान-पहचानके मिले। वे मुसकरा रहे थे। मुझसे पूछा— 'कहाँ?'

मैंने उत्तर दिया—'युगल-मन्दिर।'

कहा—'ठीक है।'·······गाड़ी चल दी।·······आँख खुल गयी। वृद्ध महाराज थोड़ी देर चुप बैठे रहे; फिर मुझसे पूछा 'क्या समझे?'

मैंने कहा—'यह कि आप-जैसे जाग्रदवस्थामें पागलकी तरह मारे-मारे इधर-उधर फिरा करते हैं, स्वप्नावस्थामें भी वैसे ही मारे-मारे फिरते रहे।' उन्होंने कहा—'नहीं समझे' सुनो। वह टूटे-फूटे मकानोंवाला गाँव इस असार संसारका ही प्रतीक है, जिसमें प्राणी-पदार्थ सब अनित्य हैं, क्षणभंगुर हैं, परंतु इसमें मनुष्य जन्म लेता है, इसके काम-धन्धेमें फँसा रहता है, धन-सम्पत्ति उपार्जन करता है। खूब दौड़-धूप करता है और अपनी समझसे सुखमय जीवन व्यतीत करता है। परंतु मनुष्य-जीवनका क्या उद्देश्य है, उसे कहाँ जाना है—सब भूल जाता है। **'मोहितो मोहजालेन पुत्रदारगृहादिषु।'** इसी तरह उसके दिन कटते जाते हैं। माया-नदीको पारकर कहीं जा नहीं सकता है। पर भगवान्‌की कृपासे एक दिन उसकी आँखें खुलती हैं। वह देखता है—

सुकृतं न कृतं किञ्चिद् दुष्कृतं च कृतं मया।

तब वह मन-ही-मन भगवान्‌को स्मरण करने लगता है और किसीकी खोजमें रहता है जो उसे जीवनके सन्मार्गका पता बता

दे। सौभाग्यवश एक दिन उसको एक पथ-प्रदर्शक मिल जाता है, जो उसको मनुष्य-जीवन सफल बनानेके राजपथका निर्देश कर देता है। वह धन्य हो जाता है।

फिर थोड़ी देर चुप रहनेके बाद उन ज्ञानवृद्ध महोदयने पूछा—'क्या समझे?'

मैंने उत्तर दिया—'अबतक मैं आपको जो कुछ समझता था उसके लिये क्षमा कीजिये और आज आपके चरण छूकर प्रणाम करता हूँ, कृपया ग्रहण कीजिये।'

—(आचार्य) श्रीचारुचन्द्र चट्टोपाध्याय, एम्०ए०

अभक्ष्यभक्षण-त्यागसे मृत्युमुखसे बचना

मेरी आयु उस समय लगभग १९ वर्षकी रही होगी। १९३२ ई० की बात है। मेरी दादी श्रीमती चुन्नाकुँअरि, जिनकी आयु लगभग ७५ वर्षकी होगी, अधिक बीमार हो गयीं। उनकी चिकित्सा मेरे गुरु आयुर्वेदाचार्य पं० मूलचन्दजी शास्त्री राजवैद्य, निवासी गोला-गोकरणनाथजी कर रहे थे। चिकित्सा करते गुरुजीको लगभग सात-आठ दिन हो गये, किन्तु लाभकी अपेक्षा हानि होती गयी। हताश होकर गुरुजीने मेरी मातासे और मुझसे कहा कि 'इनका बचना असम्भव है, औषधसे कोई लाभ नहीं पहुँच रहा है, भगवान् ही रक्षक हैं। इसलिये इनका मन जिन-जिनको देखने-मिलनेका हो, उन्हें दिखा दो।'

यह सुनकर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ। किन्तु धैर्य धारण करके मैं शुद्धचित्तसे देवालयमें गया और वहाँ भगवान् श्रीराधाकृष्णके सामने मैंने यह प्रतिज्ञा की कि 'यदि अशुभ चीजोंके त्यागसे आप प्रसन्न होते हैं तो मैं आजसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि मेरी दादी स्वस्थ हो जायँ तो आजसे मांस-मछली खाना छोड़ता हूँ और अपने बाजारमें भी मांस-मछली नहीं बिकने दूँगा।'

मैं घर लौट आया और उसी शामसे मेरी दादीका त्रिदोष ज्वर कम होने लगा। एक सप्ताहमें वे एकदम ठीक हो गयीं। गुरुजीने कहा कि 'अब तो बिना ओषधि दिये भी रोगीकी दशा ठीक है।' तबसे मैं इस प्रतिज्ञाका पूर्णरूपसे पालन करता चला आ रहा हूँ। मैंने इतिहासमें पढ़ा था कि राणा साँगापर

विजय प्राप्त करनेके हेतु बाबरने नमाज पढ़ते समय खुदासे यह प्रार्थना की कि 'मैं यदि राणा साँगापर विजय प्राप्त कर लूँ तो मैं कभी शराब नहीं पीऊँगा।' और बाबर राणा साँगापर विजयी हुआ। इतिहासकी इस स्मृतिने मुझे मांस-मछली-त्यागके लिये प्रेरित किया था।

—राजर्षि डॉ० कुँवर घनश्यामनारायणसिंह 'श्याम'

जिसकी चीज, उसीको अर्पण

बम्बईमें अनाजके एक थोक व्यापारीके यहाँ उगाहीके कामपर नौकरी करनेवाले पोपटलालको डेढ़ सौ रुपये वेतन मिलता था। बाल-बच्चे देशमें बूढ़े माता-पिताके पास रहते। पोपटलाल बम्बईमें एक बासेमें भोजन करता और रातको गद्दीमें सो रहता।

थोक अनाज और किरानेके व्यापारियोंके यहाँ बम्बईमें नमूने साफ करके उन्हें बोरोंमें भरनेके लिये अधिकांशमें स्त्रियाँ रखी जाती हैं और उन्हें 'पालावाली' कहते हैं।

पोपटलालकी गद्दीमें पालावाली जानकीबाई पचास-पचपन वर्षकी एक विधवा स्त्री थी। कुटुम्बमें वह अकेली ही थी।

भारत सरकारके इनामी बाण्ड पहले-पहले निकले तब पोपटलालकी गद्दीके सभी लोगोंने अपने थोड़े वेतनमेंसे कुछ बचाकर पाँच रुपयेका एक बाण्ड खरीदने और नसीब आजमानेका निश्चय किया। पोपटलालने जानकीबाईसे पूछा—'तुझे भी एक बाण्ड लेना है न?'

'बहुत थोड़ी तनख्वाहमेंसे पाँच रुपये कहाँसे निकालूँ।' 'कोई आपत्ति नहीं, अभी पाँच रुपये मैं दे देता हूँ, तुझे सुविधा हो तो मुझको लौटा देना।'

यों कहकर पोपटलाल पाँच रुपयेका एक बाण्ड जानकीबाईके लिये खरीद लाया। जानकीबाईको देने लगा। जानकीबाईने कहा—'मैं कहाँ सँभालकर रखूँगी, तू ही अपने पास रख।'

पोपटलालने 'यह बाण्ड मेरा और यह जानकीबाईका' यों मन-ही-मन निर्णय करके दोनों बाण्ड अपने पास रख लिये।

फिर तो यह बात भूल गयी। लगभग डेढ़ वर्ष बीत गया। जानकीबाईने वहाँ नौकरी छोड़कर दूसरी जगह कर ली और अन्तमें बीमार पड़कर वह अपने देश चली गयी। पोपटलालको अपने पासके दोनों बाण्डोंमें अबतक किसीपर इनाम नहीं मिला।

अन्तमें अभी-अभी इनामोंकी अन्तिम घोषणामें पोपटलालके पासके एक बाण्डपर ढाई हजार रुपयेका इनाम मिला। वह इनामके रुपये भी ले आया। इसी बीच उसे जानकीबाई याद आ गयी। दोनोंमेंसे जानकीबाईका कौन-सा बाण्ड था, इस बातको याद करनेका उसने खूब प्रयत्न किया और अन्तमें उसके मनमें यह निश्चय हो गया कि इनाम उसके बाण्डपर न मिलकर जानकीबाईवालेपर मिला है।

अजब महँगीका जमाना और डेढ़ सौ रुपयेकी छोटी-सी तनख्वाह, अतः पोपटलालने निश्चय किया कि इनामकी रकम वही रख लेगा। जानकीबाईने अभी उसे पाँच रुपये ही कहाँ लौटाये हैं। फिर कौन-सा नम्बर उसका है, यह भी उसको मैंने कहाँ बताया था और जानकीबाई इस समय कहाँ है, इसका भी किसको पता है? यह सब सोचनेपर भी पोपटलालकी अन्तरात्माने इसे नहीं माना।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, त्यों-त्यों पोपटलालके मनमें घोर घमासान मच गया। बुद्धि कहती है—'अरे मूर्ख! रख ले, ऐसा मौका तुझे फिर कब मिलेगा?' परन्तु वहाँ तो तुरन्त ही अन्तरात्मा कराहने लगती—'जानकीबाई तुझसे अधिक गरीब

है। तू मुझको—तेरी अन्तरात्माको धोखा देकर कबतक इन रुपयोंको पचाकर रख सकेगा।'

आखिर पोपटलालने जानकीबाईका पता लगाना शुरू किया और बड़ी मेहनतके बाद उसे खबर मिली कि जानकीबाई अपने गाँवपर है और वहाँ अपने घरके पास ही थोड़ी-सी जमीनमें धानकी खेती करके अपना काम चलाती है।

एक रविवारको खूब सबेरे पोपटलाल बम्बईकी एस-टी बसमें सवार होकर पनवेल उतर गया और दो कोस पैदल चलकर जानकीबाईके गाँव पहुँच गया।

'अरे पोपट! तू यहाँ मेरे गाँवमें?'

'जानकीबाई! उस बाण्डके पाँच रुपये तुमने मुझको नहीं दिये, उन्हें लेने आया हूँ।'

'पाँच रुपयेके लिये इतना बसका भाड़ा खर्च करके यहाँ आया? कैसा मूर्ख है। ले ये तेरे पाँच रुपये और चाहिये तो बसका भाड़ा भी ले ले।' जानकीबाईने पाँच रुपयेका नोट पोपटके हाथपर रखा और पोपटने अपनी बण्डीकी जेबमेंसे २,५०० रुपये निकालकर जानकीबाईको देते हुए कहा—'बसका भाड़ा तो नहीं चाहिये, लेकिन पाँच रुपये तो जरूर लेने हैं। इन पाँच रुपयोंपर तुझे २,५०० का इनाम मिला है।'

जानकीबाईकी आँखोंसे आश्चर्य, आभार और हर्षके आँसू ढलककर उसके झुर्री पड़े कठोर चेहरेको भिगोने लगे।

(अखण्ड आनन्द)

—गोपालदास प्र० मोदी

टूटा प्रेम फिर उमड़ा

मुजफ्फरपुर जिलाकी दक्षिण दिशामें त्यागी ब्राह्मणोंका एक सुन्दर गाँव है। बाबू रामप्रसाद तथा श्यामप्रसाद नामके दो भाई थे। बड़े रामप्रसादके एक लड़का तथा छोटे श्यामप्रसादके दो लड़के थे। परस्पर दोनों भाइयोंमें अत्यन्त स्नेह था, किन्तु दोनोंकी स्त्रियोंमें परस्पर द्वेष था। इसके फलस्वरूप महासंग्राम शुरू हो गया, मुकद्दमा चला और छोटे भाईको ग्यारह महीनेकी जेलकी सजा हो गयी।

श्यामप्रसादने बहुत प्रयत्न तथा अर्थव्यय करके केवल एक दिनके लिये छुट्टी चाही। दैवयोगसे छुट्टी मंजूर हो गयी। श्यामप्रसाद सीधे मुजफ्फरपुरसे घर आया। अपनी स्त्रीसे पूछा—'आज भैयाके यहाँ भोज है। कल नूनूका (भतीजेका) यज्ञोपवीत है।' इसपर स्त्रीने अन्यमनस्क होकर पूछा—'सुननेमें आया था कि आपको ग्यारह महीनेकी जेलकी सजा हो गयी है और आप जेलमें हैं।' इसपर श्यामप्रसादने कहा कि 'जेलमें तो था ही, किन्तु नूनूका जनेऊ है, इसलिये मैंने बहुत प्रयत्न करके केवल एक दिनके लिये छुट्टी पायी है।' सुनते ही स्त्रीने कहा—'डूब क्यों नहीं मरते? निमन्त्रणतक भी नहीं है और खानेके लिये बेचैन हो, उस दुष्ट भाईके लड़केका जनेऊ देखनेके लिये रुपये खर्च करके आये हो।' इसपर श्यामप्रसादने कहा कि ''सुनो, हम जेलसे आयेंगे, दो-चार वर्षोंतक तेरे तथा मेरे मनमें दुःख बना रहेगा। फिर दोनोंमें मेल-जोल हो ही जायगा।'

कहोगी कि 'ऐसा नहीं हो सकता' तो मैं कहूँगा 'ऐसा होगा ही; क्योंकि यही प्रकृतिका नियम है।' संयोग-वियोग, प्रीति-वैर होते-मिटते रहते हैं। फिर भी हम अनेकों यज्ञ तो देखेंगे, किन्तु तुम जानती हो ही कि नूनूका यज्ञोपवीत तो फिर नहीं देख सकूँगा।''

इन दोनोंमें ये बातें हो रही थीं, ठीक इसी समय रामप्रसाद छोटे भाई श्यामप्रसादके आनेकी बात सुनकर लोगोंके कहनेपर श्यामप्रसादको भोजनके लिये बुलाने आये थे। पति-पत्नीमें बात हो रही थी, इसलिये रामप्रसाद भीतकी आड़में खड़े होकर सब सुनने लगे। भाईकी बात सुनकर वे रोने लगे और रोते-रोते अधीर होकर लपककर छोटे भाईको हृदयसे लगा लिया। जब ऊँचे स्वरमें विशेषरूपसे दोनों भाई रोने लगे, तब तो वहाँ बहुत-से नर-नारी इकट्ठे हो गये। दोनों भाइयोंको यों स्नेहसे मिलते देखकर भले मानवोंके मनमें राम और भरतका मिलाप-जैसा प्रतीत हुआ। फिर रामप्रसादने भाई श्यामप्रसादको प्रेमपूर्वक भोजन कराया और यज्ञोपवीत हो जानेपर स्वयं मुजफ्फरपुर जाकर अपने पाससे रुपये लगाकर छोटे भाईको छुड़ाकर भ्रातृ-प्रेमका आदर्श दिखाया। हृदय पलटते ही प्रेम हो गया।

—पं० रामप्रसाद मिश्र, कथावाचक

बच्चोंके चरित्र-निर्माणका नमूना

घटना जनवरी सन् १९८२ की है। मैं एक दिन मेडिकल कालेजसे चारबाग लखनऊ स्टेशनपर बससे जा रहा था। उस समय प्रायः सभी विद्यालयोंमें छुट्टी हो चुकी थी। अतएव सभी छात्र घर जानेकी तैयारीमें थे एवं वे भिन्न-भिन्न साधनोंद्वारा अपने घरोंकी ओर अग्रसर हो रहे थे। रास्तेमें कुछ छात्र अपने योजनानुसार बसके द्वारा भी जा रहे थे। इतनेमें अन्य छात्रोंके साथ एक लगभग सात वर्षकी बालिका भी बसपर चढ़ी, परन्तु वह कंडक्टरसे बिना टिकट लिये ही आगे बढ़कर सीटपर बैठ गयी। प्रायः कंडक्टर इन बच्चोंके स्थानपर जाकर उनको टिकटें देते हैं, परन्तु दैवयोगसे ऐसी घटना हुई कि कंडक्टर भी अपने स्थानपर खड़ा रहा और वह भी अपने स्थानसे विचलित नहीं हुई, परंतु वह पूरे रास्ते उसकी ओर देखती रही। सब लोग अपने-अपने स्थानपर बससे उतर रहे थे। जब उस बालिकाके उतरनेका स्थान आया तो वह भी दरवाजेकी तरफ आयी तथा उसने कंडक्टरसे टिकटके लिये आग्रह किया। कंडक्टर यह सुनकर आश्चर्यमें पड़ गया। कंडक्टरने उससे पूछा कि 'बेटी! तुमने टिकट क्यों नहीं ली?' उसने उत्तर दिया कि 'तुम मेरी सीटपर आये ही नहीं, तो मैं क्या करती।' कंडक्टर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कहा—'जाओ बेटी', इसकी मूँगफली लेकर खा लेना, क्योंकि तुम अपना सफर तय कर चुकी हो। परंतु उस बालिकाने आग्रह करके कहा कि 'तुम मुझे टिकट दे दो, नहीं

तो इस घटनाके सुननेपर मेरी माताजी मुझे मारेंगी।' अन्तमें उसने टिकट लेकर उसे फाड़ डाला और वह अपनी राहपर चल दी। परन्तु उसके ये शब्द 'माताजी मुझे मारेंगी'—मेरे हृदयपर एक अमिट छाप छोड़ गये। कितनी वास्तविकता, स्पष्टवादिता, सच्चाई एवं शिक्षा थी इन शब्दोंमें। एक चावलके देखनेसे ही चावल पके कि नहीं, इसका पता लगता है। इसी तरह यह बात छोटी-सी थी, पर इससे बच्चीके माता-पिताकी सच्चाई तथा बच्चोंके चरित्र-निर्माणकी चेष्टाका पता लगता था। मेरी इच्छा हुई कि मैं उतरकर उससे परिचय करूँ एवं उसके माता-पिताके दर्शन करूँ, जो अपनी सन्तानको इतनी सरलतासे सत्य-जीवन बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं। परंतु बस चल चुकी थी और वह बालिका भी मेरी आँखोंसे ओझल हो चुकी थी।

—भजनसिंह सलूजा, एम्० बी० बी० एस्०

मित्रताका निर्वाह

हजारीमल और बसन्तलाल—दोनों बचपनके मित्र थे। यह लगभग पंद्रह-बीस वर्ष पहलेकी बात है। दोनों ही बड़े होकर अपने-अपने व्यापारमें लग गये। बसन्तलालको व्यापारमें कुछ सफलता मिली। उसने जितने रुपये कमाये, उसका अपनी स्त्रीको जेवर बनवा दिया। हजारीमलका काम नहीं चला। वह संकटमें रहा। होते-होते उसका काम फेल होनेकी नौबत आ गयी। उसे तेईस हजार रुपयेका देना हो गया। बहुत दुःखी था हजारीमल। बसन्तलालको इसका पता लगा। पर उसके पास नकद रुपये नहीं थे। वह अपने कुछ रुपयोंको गहनेमें लगा चुका था। व्यापारका काम परायी रकमसे करता था। उसकी साख अच्छी जम गयी थी। उसको अपने दोस्त हजारीमलकी दुरवस्थापर बड़ा दुःख हुआ, उसने मन-ही-मन सोचा गहना न बनवाया होता तो आज ये रुपये हजारीमलके संकट-निवारणमें काम आते। उसने बहुत डरते-डरते अपनी पत्नीसे सारी बातें कहीं; क्योंकि गहना उसीके पास था। पत्नी बड़ी ही साध्वी निकली। उसने कहा—'आप इतना संकोच क्यों करते हैं; गहना आपने ही तो बनवाया था और आज अपने मित्रकी इज्जत बचानेके लिये आपको ही उसकी जरूरत है। इसमें मुझे पूछनेकी कौन-सी बात है। मित्रकी इज्जत तो हमारी ही इज्जत है। गहनेसे तो केवल मेरे शरीरकी ही शोभा बढ़ी मानी जाती है, पर उनकी इज्जत बचनेमें तो हमारे दोनों परिवारोंकी शोभा है। आप अभी ले जाइये।'

ते पत्नीकी इन बातोंको सुनकर बसन्तलालकी आँखोंमें स्नेहके आँसू आ गये। उसे पत्नीके इस व्यवहारसे बड़ा ही सन्तोष तथा प्रसन्नता हुई। उसने गहना लिया, गलाया और बेचकर नकद रुपये कर लिये। हजारीमलके कर्जदारोंकी सूची वह पहले ही ले आया था, उसने अपने एक आदमीको भेजा और उससे कह दिया कि 'तुम जाकर इन सबको रुपये देकर फाड़खती ले आओ, सबसे यही कहना कि मैं हजारीमलजीका ही आदमी हूँ। उन्होंने रुपये भेजे हैं। कहीं मेरा नाम किसी भी तरह न आ जाय।' ऐसा ही हुआ था। हजारीमलके घाटेका और उनकी कठिनाईका महाजनोंको पता भी नहीं था। इससे किसीको कोई सन्देह नहीं हुआ। सबने रुपये ले लिये। फाड़खतीकी रसीदें लिख दीं। रसीदें सब बसन्तलालके पास पहुँच गयीं। बसन्तलाल सदाकी भाँति रातको हजारीमलके घर गया। वहाँ हजारीमल और उसकी स्त्री—दोनों रो रहे थे। छोटा लड़का पास बैठा माँ-बापके मुँहकी ओर निहार रहा था—विचित्र विषादभरी भंगिमासे। बसन्तलालने जाकर बातचीत की, सहानुभूति प्रकट करते हुए समझाया—'भाई! धीरज रखो—भगवान्‌को याद करो, उनकी कृपासे बहुत कठिन कार्य भी आसान हो जाया करता है।' हजारीमल जानते थे कि बसन्तलालके मनमें वास्तवमें सच्ची सहानुभूति और दुःख है, पर उसके पास नकद रुपये हैं ही नहीं, वह कहाँसे दे। गहना बेचकर वह रुपये दे दे, यह तो हजारीमलके मनमें कल्पना भी नहीं थी। बसन्तलालका उपकार माना। दोनों स्त्री-पुरुष रोकर कहने लगे—'भाई! तुम्हारे पास होता तो तुम दे ही देते। हमारे भाग्यकी बात है। तुम हमारे लिये

इतने दुःखी होते हो, यह सचमुच हमारे लिये बहुत दुःखद है। हम अपने सच्चे मित्रको दुःख पहुँचानेमें कारण बन रहे हैं।' बसन्तलालकी आँखें भी बरस पड़ीं। पर उसने कुछ नहीं कहा—धीरेसे फाड़खतीकी रसीदोंका लिफाफा हजारीमलके बिछौनेपर तकियेके नीचे रख दिया। बसन्तलालका साहस नहीं हुआ—वह डरा कि कहीं मेरे इस बर्तावसे हजारीमलके मानको ठेस न लग जाय। वह संकुचित न हो जाय—इसलिये उसने मुँहसे कुछ भी न कहकर चुपकेसे लिफाफा रख दिया और प्रणाम करके वह चला गया।

पीछेसे जब हजारीमल रोते हुए बिछौनेपर लेटे, तकिया कुछ सरका, तब लिफाफा दिखायी दिया। खोलकर देखा तो रसीदोंको देखकर दंग रह गया। सबेरे महाजनोंसे पता लगनेपर उन लोगोंने कहा कि 'कल आपने रुपये भिजवा दिये थे। हमलोगोंने रसीदें लिख दी थीं।' तब हजारीमलकी समझमें बात आयी। बसन्तलालसे मिलनेपर उसने बड़े संकोचसे स्वीकार किया।

—रामलाल शर्मा

उग्र कर्मका हाथोंहाथ दण्ड

कुछ उग्र कर्मोंका फल इसी जन्ममें हाथोंहाथ मिल जाता है, इसी तरहकी एक घटनाका यहाँ उल्लेख किया जा रहा है—

हमारे एक परिचित बन्धु × × × में रहते हैं। उस समय उनके साथ उनकी एक विधवा बहन और दसवर्षीय भानजा भी रहता था। बहन विधवा है और बच्चा नादान है, ऐसा समझकर उन्होंने उसे अपने पास रख लिया था। कई वर्षोंसे वे लोग रहते चले आ रहे थे। भाईके कोई संतान न थी, अतः मनकी सारी ममता भानजेके पक्षमें आयी, उन्होंने उसे कभी भी किसी वस्तुके अभावकी अनुभूति नहीं होने दी। स्वयं मितव्ययी और कुछ सीमातक कृपण होते हुए भी भानजेके मामलेमें उनकी हथेलीमें छिद्र हो जाया करता था।

आठ वर्ष पूर्व उन्हें गैसकी भयंकर शिकायत रहने लगी। वैसे तो यह बीमारी उन्हें गत बीस वर्षोंसे थी; किन्तु आठ वर्ष पूर्व तो उसने उग्ररूप धारण कर लिया था। ऐसी स्थितिमें उन्होंने बीमारीका जमकर इलाज करनेकी सोची। दूकानको बहन और भानजेको सुपुर्दकर जिसने जो जगह सुझायी, वहीं जा पहुँचे। इलाजके सिलसिलेमें वे हमारे शहरमें भी पधारे थे। भानजेकी चिट्ठी हर सप्ताह या पन्द्रह दिनोंमें अवश्य प्राप्त हो जाती थी। उसमें केवल एक ही प्रकारके शब्द रहते थे—'कुशल है और यही आशा करते हैं। इलाज जमकर करवाना। इधरकी फिकर मत करना, दूकानका कार्य सुचारुरूपसे चल रहा है।'

बस, '**संत हृदय नवनीत समाना।**' जानेकी जल्दी उन्होंने नहीं की। पूरे पाँच माहतक उन्होंने जमकर इलाज करवाया। आखिर लौट गये वे अपने शहरको—सर्वांशमें नहीं तो अधिकांशमें वे रोगमुक्त हो चुके थे।

स्टेशनपर उन्हें भानजा मिला। बड़े प्रेमसे उसने चरण-स्पर्श किया। तत्पश्चात् कुछ कामको निपटाकर शीघ्र ही घर आनेको कहकर चल दिया। ये घर आ गये, किन्तु यह क्या, घर तो वीरान हो चुका है। पचास-साठ हजारके मालकी दूकानमें कठिनाईसे पाँच-छः सौका माल बचा था। घर और दूकान पूरी तरह विधवाकी माँग बन चुके थे। भानजा लौटकर नहीं आया। तत्पश्चात् काफी समयतक उसका पता भी न चला। बहनसे घर, दूकानकी दुर्दशाका कारण पूछा तो उत्तर मिला कि उसने तो स्वयं गत छः माहसे खाट पकड़ रखी है। बाजारमें साख समाप्त हो चुकी थी। घरकी एक आलमारीमें खाली बोतलोंका ढेर लगा पाया। किसी-किसी जगह अभक्ष्य पदार्थके अवशेष भी दीख पड़े। इनका हृदय हाहाकार कर उठा—'माधव! यह तेरी क्या लीला है? मैं यह क्या देख रहा हूँ?' कहकर इन्होंने आँखें मींच लीं। दिल थाम लिया और फफक-फफककर रो पड़े। पास-पड़ोससे लोग आये। ऊपरी सहानुभूति दिखलायी। साथ ही सख्त कारवाई करनेका अमूल्य परामर्श भी दे दिया। इनसे अब घरकी दशा देखी नहीं जाती थी, घरका कोना-कोना इन्हें अपनी करुण कहानी कहता-सा प्रतीत होता था। साथ ही उस उद्दण्ड और पापात्मा भानजेको दण्ड दिलवानेका मौन संकेत भी कर रहा था। कण-कण चीत्कार कर रहा था। मौका देखकर बहन भी एक

दिन अपने दूरके श्वशुरगृह (कलकत्ते) खिसक गयी। कुछ लोगोंने एक अर्जी लिखी और उन्हें उसपर केवल हस्ताक्षर करनेको कहा। बाकी कारवाई करनेका उत्तरदायित्व उन्होंने ओटना स्वीकार किया। अर्जीपर हस्ताक्षर कर दिये गये। लोग पुलिस स्टेशनकी तरफ रवाना हुए। थाना अभी थोड़ी दूर ही रह गया था कि ये आँधीकी तरह दौड़े आये और अर्जी लेकर शीघ्रतासे वापस लौट गये। अर्जीके इन्होंने टुकड़े-टुकड़े कर दिये। बहन और भानजेको इन्होंने क्षमा कर दिया।

किन्तु लीलाधर इस क्षमादानको सहन न कर सके! जिस प्राणीको हम किन्हीं कारणोंसे दण्ड देना नहीं चाहते अथवा चाहते हुए भी नहीं दे पाते, उसको दण्ड देनेके लिये स्वयं जगन्नियन्ताको व्यवस्था करनी पड़ती है।

कुछ समय पश्चात् इनको कलकत्तेसे एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें बहनके लकवा हो जानेके समाचार लिखे थे। कुछ दिनों पश्चात् उसके काल-कवलित हो जानेकी सूचना मिली इन्हें। इनको मर्मान्तक वेदना हुई। अभी इस वेदनाका घाव भरा भी नहीं था कि इधर भानजेके विषपान करनेके समाचार प्राप्त हुए × × × से चले जानेपर उसकी पीठमें एक छिद्र हो गया था, जिसमेंसे चौबीसों घण्टे मवाद-रक्त आदि रिसते रहते थे। पैसा पासमें था नहीं। कुछ रोगके कारण और कुछ आत्मग्लानिवश उसने विषपान कर लिया था। किन्तु विधाताके घर अभी उसके लिये ठौर नहीं थी, सो प्राणान्त नहीं हो सका। हाँ, विषके तीक्ष्ण प्रभावसे सारे शरीरपर सफेद-सफेद निशान बन गये थे। बादमें उनसे एक प्रकारका बदबूदार पानी भी बहने लगा। इन्होंने सुना

तो कलकत्ते भागे। उसकी दशा देख कलेजा मुँहको आता था। खूब दौड़-धूप की; किन्तु अन्ततोगत्वा उसे मौतके मुँहमेंसे न निकाल सके। उधर एक नौकर, जो उनकी दूकानपर था और उस पाप-कर्ममें सम्मिलित था, बम्बई भाग गया, वहाँ लोकल ट्रेनमें असावधानीवश अपनी दोनों टाँगें गवाँ बैठा। इन्होंने सुना तो पछाड़ खाकर गिर पड़े। बोले—'लीलाधर! लीला समेटो, बहुत हुआ; अब नहीं देखा-सहा जाता। आखिर सारा दण्ड उनको ही क्यों मिलना चाहिये? मैं भी तो उसमें भागीदार हूँ। भात बिखेरकर कौओंको न्यौता तो मैंने ही दिया था। मैंने ही कुछ समझदारीसे काम लिया होता तो आज यह काण्ड क्यों देखनेको मिलता। अन्तर्यामी! बच्चे नादान थे, अज्ञानवश दुष्कर्म कर बैठे!'—कहते हुए वे बच्चेकी तरह फूट-फूटकर रो पड़े। तत्पश्चात् किसीको भेजकर उन्होंने नौकरको अपने पास बुलवाया और अपनी दूकानपर पुनः उसे शरण दी।

आज उस बातको आठ वर्ष होनेको आये। अपने अध्यवसाय और लगनसे इन्होंने पुनः अपनी खोयी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है। किन्तु कभी-कभी उस घटनाके स्मरणसे वे अत्यधिक विचलित हो जाते हैं और तब कह उठते हैं—'भरी बन्दूक नादानके हाथोंमें मैंने पकड़ायी। दण्डका भागी मैं था, किन्तु मिला उन्हें। अन्तर्यामी! कैसा है यह तुम्हारा न्याय!'

संत भी भला किसीको दोष देते हैं?

—गोपालकृष्ण जिंदल

आ गया। न्यायाधीशने फैसला देते हुए रेलवे अधिकारियोंको बड़ी फटकार बतायी और उन्हें चेतावनी दी कि "आप हमारे देशकी नाक कटानेको तैयार हो गये हैं। आज ही 'चुरा गया' के तमाम पोस्टरोंको उतारकर जहाँ-जहाँ जो-जो वस्तुएँ गायब हुई हैं, वहाँ-वहाँ नयी वस्तुएँ लगवायी जायँ।"

उसी दिनसे रेलवेके सब डिब्बोंमेंसे 'चुरा गया' के पोस्टर अदृश्य हो गये और उन स्थानोंपर नये-नये फरफराते पंखे और तेज रोशनीवाले ट्यूब लग गये।

(अखण्ड आनन्द)

—प्रेमकुमार एन० ठक्कर

बहूकी बुद्धि

अभी हालकी बात है, उत्तरप्रदेशके ही एक गाँवमें एक गृहस्थके घरमें रातको चोर घुसे। घरमें स्त्रियाँ सो रही थीं। पुरुष कोई नहीं था। चोरोंने गहना-कपड़ा बटोरकर लगभग बीस हजारका माल एक पेटीमें भरा और उसे उठाकर ले जाने लगे। स्त्रियोंमें एक बहू जाग रही थी। उसने सारी बातें देखीं, पर वह पहले कुछ नहीं बोली। जब चोर पेटी ले जाने लगे, दरवाजेतक पहुँचे कि उसने उठकर पानीकी एक बड़ी सुराहीको उठाकर बड़े जोरसे चौकमें पटका। धड़ाकेकी आवाज हुई—चोर डरकर पेटीको वहाँ छोड़कर तुरन्त भाग गये। बहूकी ठीक समयपर उपजी बुद्धिने बीस हजारका माल बचा दिया।

—सुरेशकुमार

षोडशनाम-मन्त्र-जपका चमत्कार

घटना कुछ वर्ष पूर्वकी है, मैं बस्ती जिलाजजके न्यायालयका असेसर था। मेरा घर बस्ती कचहरीसे दस मील दूर गाँव (कुरियार)-में है। एक दिनकी बात है, मुझे एक कतल-केशके सिलसिलेमें जजसाहबके न्यायालयमें असेसर (जूरी)-की हैसियतसे उपस्थित होना था।

संयोगवश उस दिन सबेरेसे ही घनघोर वर्षा आरम्भ हो गयी। मार्ग कच्चा, किसी वाहनका प्राप्त होना असम्भव और १० बजे कचहरीमें उपस्थित होना अत्यन्त आवश्यक। हवा इतनी तेज और प्रतिकूल कि छातेकी भी सहायता ले सकना असम्भव। कुछ भी समझमें न आता था कि क्या किया जाय। कचहरीमें न पहुँचनेपर ५१ रुपये जुर्माना देना पड़ता। इसके अतिरिक्त जवाबदेही और अयोग्यता, अकर्मण्यता तथा कर्तव्यहीनताका लांछन अलगसे लग जाता। मनमें विचार उठा कि 'कुछ भी हो, ऐसे तूफान और दुर्दिनमें कदापि न जाऊँ; पर कर्तव्यपालन, बदनामी तथा जुर्मानेका भय।' यही विचार करते-करते ९ बज गये। वही स्थिति थी—

इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गएँ मारिहि कपिराई॥

मनमें किसी प्रकार चैन न आता था। वर्षा बढ़नेकी जगह घटनेका नाम न लेती थी। ऐसी स्थितिमें किंकर्तव्यविमूढ़ होकर चारपाईपर पड़ गया। बगलमें 'कल्याण' का एक अंक खुला पड़ा था। कुछ न सूझनेपर वही उठाकर देखने लगा। दैवयोगसे दृष्टि

एक लेखपर पड़ी, जिसमें लिखा था 'किसी भी कार्यमें आरम्भसे लेकर अन्ततक यदि मनसे षोडशनाम-मन्त्र '**हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥**' का जप चलता रहे तो वह कार्य अवश्य सफल होता है।' पंक्ति पढ़ते ही मनको कुछ सम्बल-सा मिलता प्रतीत हुआ। वर्षा अनवरत चल रही थी। चारपाईसे उठकर खड़ा हो गया। शरीरपर एक कम्बल और उसके ऊपर एक चद्दर डाला और पानी तथा तूफानमें ही चल दिया। पूरी एकतानतासे मन '**हरे राम हरे राम........**' का जप कर रहा था। मनमें कार्यसिद्धिका आकर्षण भी था और 'कल्याण' के उस लेखकी परीक्षाका भी भाव था। दोनोंके संयोगसे तन्मयता बढ़ती गयी। वर्षाके सरगमपर पाँव सरपट चलने लगे। मन्त्र-जप सस्वर हो रहा था। मार्ग बहुत ही ऊखड़-खाबड़ होते हुए भी उस दिन हर रोजसे सरल मालूम पड़ने लगा। उसी तूफानमें कितनी जल्दी और कब मैं जजसाहबके न्यायालयके सामने पहुँच गया, मुझे पता ही नहीं चला। घड़ी देखा तो बारह बज रहे थे।

न्यायालय-कक्षमें प्रवेश करके देखा; मुकदमेकी कार्यवाही चालू थी। पहुँचकर जजसाहबको नमस्कार किया। उन्होंने मेरी ओर देखते ही, जूरीकी कुर्सियोंकी तरफ नजर डाली। सभी कुर्सियाँ खाली थीं। मेरे अतिरिक्त और दो असेसर थे जो कक्षके बाहर ही बैठे ऊँघ रहे थे। ये दोनों असेसर महोदय कई घण्टे पूर्व ही वहाँ पहुँच चुके थे, किन्तु पुकार न होनेकी वजहसे बाहर ही बैठे ऊँघते रहे।

जजने जब कुर्सियोंको खाली देखा तो तुरंत ही पेशकारसे

प्रश्न किया कि 'आज असेसरोंकी पुकार हुई ही नहीं क्या?' और मुझे बैठनेका संकेत किया। बात सचमुच यही थी। मैंने समझ लिया कि **'गई गिरा मति फेरि'** के अनुसार ही प्रभुप्रेरणासे आज असेसरलोग पुकारे ही नहीं गये। फलतः मैं सबसे पीछे पहुँचनेपर भी सबसे आगे पहुँचा हुआ माना गया और बहुत पहलेसे उपस्थित वे दोनों असेसर मेरे बाद आकर बैठे। मुकदमेकी अबतक हुई सारी कार्यवाही कैंसिल कर दी गयी और सुनवाई फिरसे आरम्भ हुई।

मैंने निश्चय कर लिया हो-न-हो अवश्य ही यह प्रभुनामके उसी षोडशनाम-मन्त्रका चमत्कार है, जिसके कारण यह अप्रत्याशित बात घटित हो गयी। घटनाका स्मरण करके मन बार-बार पुलकित होने लगा। परीक्षाके भावपर ध्यान जानेपर ग्लानि भी हुई, किन्तु प्रभुके क्षमाशील स्वभावपर ध्यान जाते ही वह विलीन हो गयी और मन द्विगुण उत्साहसे **'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।'** का जप करने लगा।

'हारेहुँ खेल जितावहिं मोही' के अनुसार यह घटना मेरे जीवनमें घटित हुई और मैं इसे भक्तजनकी भलाईके लिये ही यथा-तथा प्रकाशित कर रहा हूँ। **ॐ तत्सत्।**

—वृजमोहन चौधरी

आदर्श दयालुता

यह घटना सन् १९५८ की है। बर्नपुर अस्पतालसे एक महिला निकली, जो कि थोड़े दिनों पूर्व रेलसे कटकर घायल हो गयी थी, अस्पतालमें कोई ऐम्बुलेंस नहीं थी, जो उसे घर पहुँचा देती। लाचार होकर वह पैदल जा रही थी, इतनेमें एक साहबकी कार उसके पाससे आकर गुजरी और वहीं ठहर गयी। साहबने उसे कारमें बिठाकर निश्चित स्थानपर पहुँचा दिया। आश्चर्यकी बात यह कि अबतक कई टैक्सियाँ पार हो चुकी थीं, लेकिन किसीने भी उसकी तरफ देखा नहीं। इधर एक विदेशीको देखिये, जिसने हमारे-जैसे काले-कलूटेकी मदद की। धन्य उसकी सभ्यता तथा संस्कृति!

—सुकदेवप्रसाद

मृत्युके समय देवदूतोंका आगमन

आजके युगमें मृत्युके समय यमदूत अथवा देवदूतके आनेकी बातका शिक्षित लोग मजाक उड़ाया करते हैं। किंतु नीचे एक ऐसी सच्ची घटनाका वर्णन किया जा रहा है, जिसको पढ़कर भौतिकवादी शिक्षित वर्ग भी आश्चर्यान्वित होगा।

यह घटना आजसे १५-२० वर्ष पुरानी है। मेरे पिताजीके लघुभ्राताके श्वशुरके एक निकट-सम्बन्धी भगवद्भक्त, कर्मकाण्डी एवं कथावाचक ब्राह्मण थे। वे सात्त्विक प्रकृतिके थे। संस्कृतके वे अच्छे ज्ञाता थे। श्रीमद्भागवतपुराण और महाभारत ग्रन्थोंके वे अच्छे वाचक थे। जब वे वृद्ध हो गये और उनका शरीर दिन-प्रति-दिन क्षीण होने लगा, तब उन्होंने एक दिन घरवालोंको अपनी मृत्युका निश्चित दिन बता दिया। उन्होंने अब अपना इलाज करानेसे भी इनकार कर दिया। मृत्युके छः-सात दिन पूर्व उनकी तबीयत ठीक थी और निकट भविष्यमें मृत्यु होनेकी कोई सम्भावना नहीं थी। किंतु उनके कथनानुसार निश्चित दिन (एकादशीका दिन) था। प्रातःकाल चार बजे उनकी तबीयत कुछ खराब हुई। एक जगह भूमि धोकर और लीप-पोतकर स्वच्छ कर दी गयी एवं शय्यापर उनको लिटा दिया गया। विप्रसमूहद्वारा गीतापाठ एवं भजनादि हो रहा था। नौ बजेके लगभग उन्होंने कहा—'एक घड़ी बाद मेरी मृत्यु हो जायगी;

मृत्युके बाद कोई शोक न मनावें। आज तो मेरे लिये शुभ दिन है; क्योंकि श्रीकृष्णमुरारि मुझे बुला रहे हैं।' इस प्रकार बात करते-करते ही वे बोले—'देखो, वह आकाशसे विमान उतर रहा है, जिसपर पीत-वर्णकी ध्वजा लगी हुई है। उसपर भगवान्के दो पार्षद (देवदूत) पीताम्बरधारी चवँर लिये बैठे हैं।' यह बात सुनकर सबको बड़ा कौतूहल हुआ। विमान तो सिवा उनके और किसीको नहीं दिख रहा था। उपर्युक्त वाक्य कहते ही उनका स्वर्गवास हो गया। सबको एक भीनी-सी अद्भुत सुगन्धका अनुभव हुआ और सबके नेत्र एक क्षणके लिये अज्ञात शक्तिके वशीभूत हो बन्द हो गये। नेत्र खोलनेपर सबने देखा कि कुछ क्षणों पूर्वका वातावरण गायब हो चुका है। पण्डितजीका निर्जीव स्थूल शरीर पड़ा है। तदनन्तर लौकिक अन्त्येष्टि क्रियादि की गयी।

यह घटना राजस्थानके भीलवाड़ा जिलेके एक ग्रामकी है।

—श्याममनोहर व्यास, एम्० एस्-सी०

मच्छर, मक्खी, बिच्छू इत्यादि कीड़ोंके विष दूर करनेका उपाय

बिच्छू-जैसे विषैले जानवरके विष दूर करनेका एक अनुभूत उपाय है। आमका ताजा बौर एक सेर लेकर हाथोंपर आध घण्टेतक खूब मलना चाहिये। फिर हाथोंको आध घण्टे सूखने दिया जाय। इससे हाथोंमें जादू-जैसा असर हो जाता है और यह असर पूरे एक वर्ष रहता है।

जब कभी कोई बिच्छू इत्यादि काट ले तो जिस आदमीने हाथोंमें बौर मला हो, वह आदमी जिसको बिच्छूने काटा है उस आदमीको आठ-दस मिनटतक हाथोंसे मले (जहाँपर काटा है) निश्चय ही आराम हो जायगा। परन्तु इस टोटकेके प्रयोगमें पैसा लेना महापाप है।

—आर० सी० शर्मा

मूक-सेवा

(१)

'सयानी लड़की हो गयी, विवाह तो करना ही है, पर वे तो पाँचसे कममें मानते ही नहीं। तुम जानती हो, मेरे पास कुछ भी नहीं है। दो सालकी मेरी बीमारीमें सब स्वाहा हो गया'—यों कहकर पन्नालाल रो पड़ा। पत्नी सीता भी रो पड़ी। लड़की सो गयी थी, उसकी ओर माँने देखा तो रुलायी और भी बढ़ गयी। करुणा-रस मानो मूर्तिमान् हो गया। बाहर किवाड़की आड़में खड़ा कोई देख-सुन रहा था।

पाँचवें दिन अकस्मात् बर्दवानसे भेजी हुई एक बीमा रजिस्ट्री पन्नालालको मिली, उसमें छः हजारके सौ-सौके नोट थे। भेजनेवालेका कोई पत्र साथ नहीं था। लिफाफेपर भेजनेवालेका नाम-पता था, पर पन्नालालके पता लगानेपर वहाँ उस नामका कोई आदमी नहीं मिला। लड़कीके विवाहके लिये भगवान्ने ही यह सहायता भेजी है, यह समझकर पन्नालालने सानन्द लड़कीका विवाह कर दिया।

(२)

'साढ़े ग्यारह हजारकी डिग्री थी। कुर्कीका आर्डर हो चुका, कल-परसों कुर्की आयेगी। नकद पैसा एक भी पास नहीं। कुर्कीमें घरके कपड़े-लत्ते, बर्तन तथा एक छोटा-सा घर कुर्क हो जायगा। बदनामी तो होगी ही, राहके भिखारी हो जायँगे।' घरवाला बहुत परेशान है, अपनी बदनसीबी और असमर्थतापर

रो रहा है! कोई सहायक नहीं!

दूसरे दिन समाचार मिलता है, कोर्टमें रुपये पूरे भरे गये। कुर्कीका हुक्म रद्द कर दिया गया।

(३)

विधवा लड़की है। तीन वर्ष पहले ब्याह हुआ था। घरमें सहायक कोई नहीं, विधवाके माता-पिता मर गये। बहुत बड़े घरानेकी माता-पिताकी एकमात्र लड़की, बड़े सुखसे पली-पुसी। विवाह भी बड़े सम्पन्न घरमें हुआ। पर दोनों ओर ही अकस्मात् भयानक घाटा लगा! सब कुछ जाता रहा। दोनों ही फार्म फेल हो गये। इसी चोटसे माता-पिता और पतिका देहान्त हो गया। लड़की सर्वथा असहाय, असमर्थ। कहाँ जाय, क्या करे। अकस्मात् एक दिन ढाई सौ रुपये मनीआर्डरसे आये। फिर तो कभी कहींसे, कभी कहींसे मनीआर्डरसे रुपये आने लगे हर महीने। कभी डेढ़ सौ, कभी दो सौ, कभी ढाई सौ, भेजनेवालेके नाम-पते विभिन्न और सभी गलत। भगवान्‌ने ही यह सहायता की!

ऐसी ही चोरीसे सहायता करनेवाले पवित्र मूक सहायताके लिये सदा प्रस्तुत एक आदमी थे और उनका यह कार्य सतत चालू रहता था। यहाँ तो नमूनेके तौरपर ये तीन उदाहरण दिये गये हैं।

—एक जानकार

हिंसाका बदला

सुजानगढ़ (राजस्थान)-से पूर्व छः कोसपर ढोगरास गाँव है। वहाँके ठाकुर थे—किसनसिंह। विवाहको दो वर्ष हुए थे। ठाकुर अपनी ठकुरानीके साथ एक समय ऊँटपर सवार होकर कहीं जा रहे थे। रास्तेमें उदरासर नामक गाँवके बगलसे जाते समय बकरियोंकी टोलीके साथ एक बड़े भारी बकरेको चरते देखा। उसे देखकर ठकुरानी पतिसे बोली—'आपके घर आनेके बाद मैंने कभी पेटभर बकरेका मांस नहीं खाया है। देखिये, यह कैसा मोटा-ताजा बकरा चर रहा है।'

तीन-चार दिनोंके बाद किसनसिंहने जाकर अकेले चरते बकरेको काँटोंसे दबा दिया और कुछ रात बीतनेपर उसे बोरेमें भरकर वह अपने घर ले आया और मारकर मांस पकाकर सब लोगोंने खा लिया।

एक सालके बाद ठकुरानीके बच्चा हुआ। वह दिनोदिन बढ़ने लगा। माता-पिताके आनन्दकी सीमा नहीं रही। तेरह वर्षका होनेपर उसकी सगाई कर दी गयी और चौदहवें वर्षमें विवाह करनेका निश्चय किया गया। विवाहकी तैयारी हो गयी। बान बैठ गया। सगे-सम्बन्धी सब घरमें जमा हो गये। बारातका समय हो गया। बाजे बजने लगे। लड़केको स्नान कराकर विवाहकी पोशाक पहनायी गयी और उसे गणेश-पूजनके लिये बैठाया गया। इसी समय अचानक लड़का बेहोश होकर गिर पड़ा। चारों ओर हल्ला मच गया। होश करानेकी चेष्टा की जाने

लगी। लोग हवा करने लगे। किसनसिंहने समीप आकर कहा—'बेटा बालसिंह! तुम्हें चैन है या नहीं, चेत करो, देखो, कितने लोग तुम्हारे लिये चिन्तित हो रहे हैं।'

बालसिंहने होशमें आकर कहा—'पिताजी! आपकी-हमारी इतने ही दिनोंकी माँगत थी। मैं उदरासरके कुँवरदान चारणका छोड़ा हुआ वही बकरा हूँ, जिसे आपने काँटोंमें दबा दिया था और ऊँटपर लादकर घर लाकर मार डाला था और मांस पकाकर मिलकर खाया था। मैंने आपसे अपना वही बदला चुका लिया। अब मैं जा रहा हूँ।'

इतना कहकर वह सदाके लिये सो गया। सब रोते रह गये।

—भूरामल गिनाड़िया

हलवाईकी ईमानदारी

एक गरीब हलवाईकी ईमानदारीकी जो घटना मुझे बतायी गयी, वह इस प्रकार है—

'मैं उन दिनों कानपुरके कर्नलगंज मुहल्लेमें रहता था। सर्राफेकी दूकान थी, गहने बनानेका काम करता था। दिनभर दूकानपर काम करता था, फिर शामको भी सारा माल-असबाब चाँदी-सोना-जेवरात आदि लेकर घर चला जाया करता था। घर दूकानसे थोड़ी ही दूरपर था। दूकानमें सुरक्षाका उचित प्रबन्ध न होनेसे कीमती सामान वहाँ नहीं छोड़ता था। रोजकी भाँति उस शामको भी मैं माल लेकर, जो गोल डब्बोंमें भरा था, घर जा रहा था। उन दिनों शहरमें हिन्दू-मुस्लिम-दंगे जोरोंपर थे। शहरमें शान्ति बनाये रखनेके लिये फौजकी गश्त होती थी। सूरज डूबनेके बाद पूरे शहरमें कर्फ्यू लग जाता था। उसके बाद कोई बाहर घूमते पकड़े जानेपर गिरफ्तार कर लिया जाता था। मैं दूकान बन्द करके ज्यों ही चार कदम आगे बढ़ा था कि गोरे सिपाहियोंकी ललकार सुनायी पड़ी, मुझसे रुकनेके लिये कहा गया। मेरे पास मूल्यवान् सामान था। गोरोंके हाथमें पड़कर पता नहीं उसकी क्या दुर्गति हो, क्या पता.........ये लोग लूट-खसोटकर खा-पी जायँ, जिसकी सौ फीसदी सम्भावना थी, मैंने जल्दीसे बढ़कर वह सारा माल सामनेकी एक हलवाईकी दूकानमें फेंक दिया। उस हलवाईने जल्दी-जल्दी जो अपनी दूकान बन्द की तो उसकी बहुत-सी मिठाई बिखरकर बर्बाद हो

गयी। बादमें गोरे सिपाही मुझे लारीमें बैठाकर कोतवाली ले गये। वहाँ नाम-पता आदि पूछकर रातभर रखनेके बाद दूसरे दिन सुबह मुझे छोड़ दिया गया।

मैंने अपने मालके मिलनेकी कोई उम्मीद नहीं रखी थी। उसे भगवान्‌के सहारे छोड़ दिया था। मिलेगा तो अच्छा; न मिलेगा तो भी कोई उपाय नहीं। पर मैं उस हलवाईका बहुत आभारी हूँ कि उसने पूरा-पूरा माल वैसा ही मुझे लौटा दिया। मेरा एक पाईका भी नुकसान नहीं हुआ।' वृद्ध महाशयजीने थोड़ी देर रुकनेके बाद पुनः कहा—

'पता नहीं वह बेचारा कहाँ है और कैसी हालतमें है। वह जहाँ भी हो भगवान् उसका भला करे तथा उसको और उसके बच्चोंको तरक्की दे।'

खुदाके बन्दे, उस ईमानदार हलवाईकी मार्मिक कहानी सुनकर मुझे विस्मयमय हर्ष हुआ और पुराने ऋषि-मुनियोंका उपदेश '**परद्रव्येषु लोष्टवत्**' 'दूसरोंके धनको मिट्टीके समान समझो', याद आ गया। मेरी आँखें गीली हुए बिना न रह सकीं।

—सुबोधकुमार द्विवेदी

स्थान, अन्न आदिपर संगका प्रभाव

(दो विचित्र स्वप्न)

[कुछ दिनों पहले पिलखुआके भक्त श्रीरामशरणदासजीने महात्मा श्रीआनन्दस्वामीजीके सत्संगमें सुने हुए एक प्रसंगके आधारपर एक लेख भेजा था। उसमें जिस घटनाका उल्लेख था, उसका सम्बन्ध सम्मान्य श्रीरणवीरजीसे था। श्रीरणवीरजी आर्यसमाजके प्रसिद्ध विद्वान् महात्मा श्रीआनन्दस्वामी महाराज (गृहस्थाश्रमका नाम—श्रीखुशहालचंदजी)-के सुपुत्र हैं और प्रसिद्ध उर्दू 'दैनिक मिलाप' के स्वामी तथा सम्पादक हैं। अंग्रेजी शासनमें इनको फाँसीकी सजा हुई थी, ये जेलमें रहे थे और फिर निर्दोष छूट गये थे। अतएव उपर्युक्त लेखमें दी गयी घटनाकी ठीक जानकारीके लिये श्रीरणवीरजीसे पूछा गया। उन्होंने उत्तरमें लिखा है—

'पूज्य स्वामीजीने अथवा लेखक महोदयने दो घटनाओंको एक कर दिया है। अपने जेल-जीवनमें मुझे कुछ अजीब-से आध्यात्मिक अनुभव हुए। जैसे—स्थानका प्रभाव क्या है, अन्न और अन्नके बनानेवालेका उस अन्नके खानेवालेपर क्या प्रभाव पड़ता है, संगका क्या प्रभाव है और मन्त्रका क्या प्रभाव है। यह भी देखा कि मन शुद्ध, स्वच्छ और एकाग्र हो तो उसके लिये भूत, भविष्य, वर्तमान सब एक हो जाते हैं, दूर तथा निकट भी एक हो जाते हैं।'

'ये सब तो लम्बी बातें हैं। वे दो घटनाएँ जो लेखमें एक कर दी गयी हैं—ये हैं।'

श्रीरणवीरजीने इतना लिखकर उन दोनों महत्त्वपूर्ण घटनाओंका संक्षेपमें उल्लेख किया है। उनको यहाँ प्राय: उन्हींकी भाषामें अलग-अलग दो शीर्षक देकर नीचे प्रकाशित किया जा रहा है। पाठक इनपर विचार करें और लाभ उठावें। —सम्पादक]

(१)

स्थानका प्रभाव

पहले दिन मैं लाहौरके बोर्स्टल जेलमें पहुँचा तो रातको मैंने बहुत भयानक सपना देखा। एक कच्चा-सा देहाती मकान। उसके छोटे-से द्वारसे मैं भीतर घुसा। खुले आँगनमें पहुँचा। आँगनसे एक कोठरीमें। वहाँ मेरी माताजी अपने बालोंमें कंघी कर रही थीं। मैंने उन्हें बालोंसे पकड़ा। वे चिल्लायीं तो उन्हें घसीटता हुआ मैं बाहर आँगनमें ले आया। और पता नहीं, कहाँसे एक छूरा लेकर बार-बार उनकी छातीमें घोंपने लगा। मेरे सामने वे तड़पीं! मेरे सामने उनका खून बहा। फिर भी मैं रुका नहीं। छूरेके बाद छूरा मारता चला गया।

और इसी घबराहटमें जागकर देखा—अँधेरी कोठरी है। जेल है। कहीं कुछ नहीं। अपने माता-पितासे मैं प्यार करता हूँ। अपनी पूज्या माँके लिये ऐसी बात मैंने कभी सोची ही नहीं। दु:ख हुआ कि ऐसा सपना आया क्यों? रातभर सो नहीं पाया। सुबह होते ही जेलवालोंसे कहा—'मेरी माताजीका हाल पूछ दीजिये मेरे घरसे। शायद उनकी तबीयत अच्छी नहीं है।' उन्होंने पूछकर

बताया कि 'वे बिलकुल ठीक हैं।' लेकिन दूसरी रात फिर वही सपना। फिर मैं सो नहीं पाया। सलाखोंवाले द्वारके पास आकर खड़ा हो गया। तभी गश्त करते हुए एक जेल-अफसर उधरसे गुजरे। मुझे देखकर बोले—'तुम सोये नहीं?' मैंने उन्हें स्वप्नकी बात कही तो वे आश्चर्यसे बोले—'यह कैसे हो सकता है; तुम कल यहाँ इस कोठरीमें आये हो, परसोंतक यहाँ एक और आदमी था एक देहाती। उसने ठीक ऐसे ही अपनी माँकी हत्या की थी। ठीक ऐसा ही वह मकान था, जैसा तुमने सपनेमें देखा। ठीक ऐसे ही वह बदनसीब माँ तड़पी और चिल्लायी थी। ठीक ऐसे ही वह शैतान उसे छूरेके बाद छूरा मारता गया था। मैंने गवाहोंके बयान सुने हैं। परसों ही उस देहातीको फाँसीकी आज्ञा हुई। उसे सेण्ट्रल जेलमें भेज दिया गया। लेकिन तुमको यह सपना आया कैसे?'

तब मैंने समझा कि हमारे शास्त्र जिसको स्थानका प्रभाव कहते हैं, वह क्या है। वह अभागा आदमी मुझसे पहले कई मास इस कोठरीमें रहा। हर समय वह अपने कुकृत्यकी बात सोचता था और उसके विचार, उसकी भावनाएँ, उसकी पापमयी अनुभूति इस कोठरीके कण-कणमें धँसी जाती थी। वह चला गया, लेकिन उसकी दूषित, पापपूर्ण भावना अब भी इस कोठरीमें है, उसीके कारण मैं यह सपना देखता हूँ।

मैंने जेलके अधिकारीसे कहा—'आप कृपा करके मेरी कोठरी बदल दीजिये। मैं यहाँ रहूँगा नहीं। ऐसा न हुआ तो मैं अनशन कर दूँगा।'

लेकिन अनशनकी नौबत नहीं आयी। दूसरे दिन मेरी

कोठरी बदल दी गयी। फिर वह सपना कभी आया नहीं।*

(२)

भोजन बनानेवालेका भोजन करनेवालेपर प्रभाव

यह घटना लाहौरके सेन्ट्रल जेलमें हुई। मैं तब फाँसीकी कोठरीमें था। फाँसीका हुक्म हो चुका था। यहीं मैंने पहली बार भगवान्‌की उपलब्धि की। पहली बार सच्चे रूपमें मैं आस्तिक बना। (वह दूसरी कहानी है, उसे यहाँ नहीं लिखूँगा।) यहीं मैंने पूज्य पिताजीसे उपनिषद् पढ़ना शुरू किया। गायत्री और मृत्युंजय-मन्त्रका जप भी शुरू किया। मन स्वच्छ था, निर्मल और शान्त।

तभी एक रात गन्दे-गन्दे सपने आने लगे। हर बार मैं घबराकर उठता। थोड़ा-सा जाप करके सो जाता। फिर वही स्वप्न। वही रोती-चिल्लाती हुई नौजवान-सी लड़की। वही कुकर्म। तंग आकर रातके दो बजे मैंने हाथ-मुँह धोये। जापके लिये बैठ गया। लेकिन पहलेकी तरह जापमें भी जी नहीं लगा। दूसरे दिन पिताजी आये तो उनसे सारी बात कही। उन्होंने पूछा—'कोई बुरी किताब तो नहीं पढ़ी?'

मैंने कहा—'मेरे पास उपनिषदोंके सिवा कोई किताब है ही नहीं।'

वे बोले—'किसी बुरे आदमीकी बातें तो नहीं सुनीं?'

---

* संगका अद्‌भुत प्रभाव है। जैसा संग होता है, जीवन उसी रंगमें रँग जाता है। संग केवल मनुष्यका ही नहीं होता। स्थान, भोजन, वस्त्र, चित्र, साहित्य, व्यवसाय, दर्शन, श्रवण, स्पर्श आदि सबका होता है और उसका निश्चित प्रभाव पड़ता है। बुरी चीजोंके संगसे मन बुरा बनकर जीवन बुरा हो जाता है, इसीसे सभी प्रकारके दु:संगका त्याग करना आवश्यक है।

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥

—सम्पादक

मैंने कहा—'यह फाँसीकी कोठरी है। यहाँ आयेगा कौन?'

वे बोले—'कोई बुरा खाना तो नहीं खाया ?'

मैंने कहा—'खाना तो बहुत स्वादु था। एक नया कैदी आया है। उसने बनाया था।'

पिताजीने जेलवालोंसे पूछा तो पता लगा कि यह नया कैदी एक नौजवान लड़कीसे बलात्कार करनेके अपराधमें कैद हुआ है। उसकी सारी कहानी सुनी तो वह ठीक वही थी, जो मैंने सपनेमें देखी थी।

प्रकट है कि उसके बाद मैंने उसका बनाया हुआ भोजन नहीं किया, फिर वह सपना भी नहीं आया।

तब समझा कि हमारे शास्त्र भोजन बनानेवालेकी शुद्धतापर जो इतना जोर देते हैं, सो क्यों देते हैं।* —रणवीर

---

* भोजन एक पवित्र यज्ञ है, जिसके द्वारा वैश्वानररूपसे अन्तरमें विराजित भगवान्‌की पूजा होती है, वह जीभकी तृप्तिके लिये खाया जानेवाला 'खाना' नहीं है। भोजनका मन तथा शरीरपर अनिवार्यरूपसे बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। उपर्युक्त सत्य घटनासे यह सिद्ध होता है—भोजन बनानेवाले व्यक्तिके विचारपरमाणु भी भोजन करनेवालेके मनपर अपना प्रभाव डालते हैं। इसलिये भोजनकी पवित्रतापर शास्त्रोंने इतना जोर दिया है। भोजन-पवित्रताके लिये नीचे लिखी बातें आवश्यक हैं—

(क) भोजन जिन पदार्थोंसे बना है वे पदार्थ सत्य और न्याय-संगत रीतिसे उपार्जित धनसे खरीदे हुए हों; अन्यायोपार्जित धनसे अन्नकी अशुद्धि होती है और खानेवालेकी बुद्धि बिगड़ती है।

(ख) भोजन करानेवालेके मनमें प्रेम तथा सद्‌भाव हो, द्वेष या असद्‌भाव न हो। इसीलिये श्रीकृष्णने दुर्योधनके यहाँ भोजन नहीं किया था। द्वेष, दुःख और असद्‌भावयुक्त भोजनसे शरीरमें रोग होते हैं और मानस रोगोंका भी उदय तथा संवर्धन होता है।

(ग) भोजन बनानेवाला स्नान किया हुआ शुद्ध हो; स्वच्छ कपड़े पहने हो; उसके कोई रोग न हो; वह काम, क्रोध, भय, हिंसा, विषाद आदिकी मानस स्थितिमें न हो। सर्वथा शुद्ध आचार-विचारवाला हो।

(घ) भोजन बनानेका स्थान गन्दगी-भरा न हो, शुद्ध धोया हुआ हो, अहिंसामय हो, एकान्त हो, सम्भव हो तो गोबर तथा शुद्ध मिट्टीसे लिपा-पुता हो।

एक अद्भुत चमत्कारी कवच! आप सिद्ध कर देखें

चौदह-पंद्रह वर्षकी कन्या बुखारसे बड़बड़ा रही है। कई दिनोंसे बुखारकी तेजी ही कम होनेमें नहीं आ रही है, डॉक्टरी उपचार चल रहे हैं; किन्तु गरमी, सिर-दर्द, पीड़ा और ज्वरका प्रकोप कम नहीं हो रहा है। डॉक्टर परेशान और घरवाले उद्विग्न! अब क्या करें।

मेरे चचा डॉ० बेनीचरण महेन्द्र (अध्यक्ष, विज्ञानविभाग, आगरा कॉलेज) उसे देखने गये। लड़कीकी बुरी हालत थी। वह तड़पती हुई विस्फारित नेत्रोंसे आनेवालोंको देखती, पर कुछ कह न पाती। सभी बड़े परेशान थे। चचा साहब भी बीमारके समीप आ खड़े हुए। उन्हें देखकर उस कन्यामें कुछ

(ङ) भोजन-पदार्थ राजस-तामस न हो—अधिक खट्टा, अधिक नमकीन, अधिक कड़वा, अधिक तीखा, अधिक गरम, जलन पैदा करनेवाला और रूखा तथा मनमें रजोगुणीवृत्ति—भोगवासनाको उत्पन्न करनेवाला भोजन राजस होता है; एवं रसहीन, दुर्गन्धयुक्त, बासी, जूँठे, अमेध्य, मनमें पापवृत्ति तथा विकार पैदा करनेवाले—लहसुन, प्याज आदि पदार्थ तामसिक हैं और शराब, अण्डे तथा मांस आदि तो घोर तामसिक हैं। इनसे बुद्धिनाश, सत्त्वनाश तथा विभिन्न मानस तथा शारीरिक रोगोंकी निश्चित उत्पत्ति होती है।

(च) किसीका जूँठा न हो। जब भोजन बनानेवालेके अन्त:स्थ विचारोंके परमाणुओंका खानेवालेपर असर होता है तब जूँठनका असर तो निश्चय होगा ही। जूँठन खाना अत्यन्त हानिकर है। आजकल जूँठनका विचार प्राय: उठ गया है। व्यक्तिगत ही नहीं, सामूहिक वफे पार्टीमें प्रत्यक्ष पशु-आचारवत् जूँठन खायी जाती है। यह बड़ा ही घातक है।

—सम्पादक

जागृति-सी आयी। वह लड़खड़ाती-सी जबानमें बोली.........
'स्तोत.........स्तोत।'

'स्तोत' क्या, कोई भी न समझ पाया। हमारे चचाजी यकायक उस लड़कीका अभिप्राय समझे और बोले, 'ले बिटिया, तूने अच्छी याद दिलायी! अभी स्तोत्रसे तेरा बुखार दूर करता हूँ।'

कौन-सा स्तोत्र? कैसा स्तोत्र? क्या यह भी चिकित्सा-शास्त्रकी कोई नयी खोज है? हमलोग कुछ भी समझ न पाये।

उधर चचा साहब, बीमारके पास सिरहाने बैठ गये और उसके ऊपर हाथ फेरते हुए संस्कृतमें कुछ मन्त्र परम श्रद्धा और पूर्ण विश्वासके साथ उच्चारण करने लगे। वे उस मन्त्रके शब्दों, छिपे हुए विचारों और गुप्त संकेतों (Suggestion)-में तन्मय हो गये।

लगभग दस मिनिटतक बीमारका कमरा मन्त्र-ध्वनिसे मुखरित होता रहा। सारा वातावरण मन्त्रकी आवाजसे गूँजने लगा। कन्या शान्त दिखायी देने लगी, उसकी पीड़ा कम दिखायी दी और धीर-धीरे जैसे किसी अदृश्य गुप्त शक्तिका प्रभाव उसपर होने लगा। उसे नींद आ गयी। सभी चकित थे। लड़कीकी तड़पन कम हो चुकी थी। फिर बुखार नापा गया तो सबने आश्चर्यसे देखा कि सचमुच वह कम होकर ९९ पर आ गया था। वह एक हैरतमें डालनेवाला दृश्य था। जहाँ डॉक्टरका इन्जेक्शन कुछ काम न कर सका था, वहाँ हमारे चचाजीका चमत्कारी स्तोत्र काम कर गया था। वह कौन-सा करिश्मा था, सब पूछने लगे।

सभी उस स्तोत्रकी बातचीत सुनने लगे। हमारे चचाजीने बताया—'मैंने इस अद्‌भुत स्तोत्रका प्रयोग अनेक संकटकालीन परिस्थितियोंमें किया है। बिच्छू काटनेसे लेकर ऋणग्रस्तता, नौकरी छूटना, बुखार, तबीयत खराब होना, गमी-मुसीबत, विपत्ति, सिर-दर्द, चिन्ता और अन्यान्य संकटकालीन परिस्थितियोंमें काममें लिया है। हर तकलीफमें इस स्तोत्रने अपना चमत्कार दिखाया है। मुझे ही नहीं, सैकड़ोंको अद्‌भुत लाभ पहुँचा है।'

हमने पूछा, 'आपको यह किसने सिखाया?'

वे बोले, 'एक बार हम बीमार पड़े थे। बीमारीसे बड़े परेशान थे। मन बड़ा उद्विग्न था। सब प्रकारके उपाय करके हार रहे थे। हमसे मिलने एक मित्र आये तो उन्होंने उन्हीं दिनों आगरेमें आये हुए एक महात्माका नाम बताया और उनसे सलाह लेनेको कहा। महात्माजीको बड़ी कठिनाईसे लाया गया तो उन्होंने एक स्तोत्रका पाठ किया और देखते-देखते दस मिनिटमें मुझे मानसिक बल मिला। स्तोत्रका अर्थ मैंने विस्तारसे समझा और पूर्ण विश्वासके साथ उसे नवरात्रमें सिद्ध किया। अब मेरी यह पेटेण्ट दवाई बन गया है। अनेक व्यक्ति संकटके समय मुझे बुलाकर इसका पाठ कराते हैं और सदैव लाभ उठाते हैं। इसमें अपूर्व शक्ति, साहस और गुण भरे हुए हैं। यह बड़ा गुणकारी है। इसके एक-एक शब्दमें नयी शक्ति उत्पन्न करनेका रहस्य भरा पड़ा है। यह एक चमत्कारी कवच है।'

मैंने पूछा, 'आप तो विज्ञानके आचार्य हैं। आपको इस स्तोत्रपर कैसे विश्वास हुआ? धर्म और विज्ञान तो बिलकुल पृथक् दिशाओंमें चलते हैं। एक श्रद्धाप्रधान है तो दूसरा बुद्धिप्रधान।'

वे बोले, 'आप जानते हैं कि ध्वनिका प्रभाव मनुष्यके शरीर और मनपर पड़ता है। युद्धमें बन्दूक, बम, बारूदके फटाके तथा भीषण ध्वनियोंसे मनुष्यके शरीर और मनमें अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। कितनोंके ही मुँह टेढ़े हो जाते हैं, लकवा हो जाता है, नाड़ी-संस्थान कमजोर पड़ जाता है और हृदयके अनेक रोग विकसित हो जाते हैं। तेज आवाजसे वायुमण्डलमें कम्पन पैदा होते हैं, जो वायुके माध्यमसे मनुष्यके मस्तिष्कपर मजबूत प्रभाव डालते हैं। यह प्रभाव अच्छा भी हो सकता है। इससे रोगी और चिन्तित मनमें शान्ति और बल पैदा हो सकता है। जिस स्तोत्रको मैं पढ़ता हूँ उससे वायुमण्डलमें आरोग्य, बल, शान्ति और रक्षाकी वृद्धि होती है। ये कम्पन बीमारके गुप्त मनमें जाकर रोग-शोक, पीड़ा और परेशानीके विचार दूर कर दिव्य मानसिक बलकी सृष्टि करते हैं। इस आत्मबलसे ही रोग दूर होते हैं। जितनी पुष्टतासे व्यक्ति स्तोत्रका पाठ करता है, उतनी शीघ्रतासे ही क्लेश और परेशानी दूर होकर आनन्द और स्वास्थ्यकी स्थिति आती है। यह मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया (दवाई) है।'

वह स्तोत्र कौन-सा है?

इस चमत्कारी स्तोत्रका नाम 'रामरक्षास्तोत्र' है। इसके बुधकौशिक ऋषि हैं। इसमें महासती सीता तथा महाशक्तिकेन्द्र भगवान् श्रीराम इसके देवता हैं। श्रीमान् हनुमान्‌जी इसके कीलक हैं। यह अनुष्टुप् छन्दमें लिखा गया है। भगवान् रामकी इतनी प्रचण्ड आध्यात्मिक शक्तियाँ हैं कि उनकी सिद्धिसे संसारके सब शारीरिक और मानसिक रोग दूर किये जा सकते हैं। सिद्धकर्ताको बड़े विश्वास और आत्म-श्रद्धासे इसका पुनः-पुनः पाठ करना

चाहिये और विशेषरूपसे नवरात्रमें इसको सिद्ध करना चाहिये। रामनवमी भी इसके लिये पवित्र अवसर है।

उत्तम तो यह है कि '**रामरक्षास्तोत्र**' का अर्थ समझ लिया जाय; क्योंकि इसके अक्षर-अक्षरमें शक्ति-संचारकी पवित्र भावनाएँ भरी पड़ी हैं।

लीजिये आप भी सिद्ध कीजिये

नीचे लिखे रामरक्षास्तोत्रपर ध्यान एकाग्र कीजिये। उच्च स्वरसे और प्रगाढ़ श्रद्धापूर्वक उच्चारण कीजिये। आपमें भगवान् श्रीरामके प्रति जितना अखण्ड विश्वास होगा उतना ही लाभ होगा। बिना श्रद्धाके कुछ लाभ न मिलेगा।

'**रामरक्षास्तोत्र**' एक मनोवैज्ञानिक औषध है। इसमें वे सब भव्य विचार भरे पड़े हैं, जिनसे मानसिक रोग दूर होते हैं और अलौकिक शक्ति उत्पन्न होती है।

जब आप बेहद घबरा रहे हों, परेशानी मारे डालती हो, जीना न चाहते हों, घोर अशान्ति और घृणामेंसे गुजर रहे हों, जीवन नीरस और दुःखी मालूम होता हो, संसार कपटी, निर्दयी और पाखण्डी प्रतीत होता हो तब आप रामरक्षास्तोत्रका पाठ कर सूक्ष्म आध्यात्मिक शक्तिसे जरूर लाभ उठावें। धनबल, विद्याबल और बुद्धिबलसे भी अधिक बलवान् यह मन्त्र है। इससे कुसंस्कार दूर होकर शुभ संस्कार जमते हैं और आशाकी किरणें फूट निकलती हैं। हजारों व्यक्ति रामरक्षास्तोत्रसे मृत्यु, परेशानी, पागलपन और आत्महत्या-जैसे रोगोंसे बचे हैं। इससे शरीर रोगविहीन होता है, आरोग्यकी वृद्धि होती है, मस्तिष्क तथा ज्ञानतन्तु पुष्ट होते हैं, स्मरणशक्ति तीव्र होती है, रक्तचाप (ब्लड-

प्रेशर) और हृदय-रोग मूलसे दूर हो जाते हैं। हमारे मानसिक स्वास्थ्य और सन्तुलन (Mental Balance)-के लिये इसका प्रतिदिन पाठ किया जाय तो गुणकारी है। प्रत्येकको पूजाके साथ प्रतिदिन इसका अभ्यास करना चाहिये। (अनुष्ठानके लिये नवरात्रमें ११ पाठ हों तो उत्तम है।)

चमत्कारी रामरक्षास्तोत्र

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥ १॥

'श्रीरघुनाथजीका चरित्र सौ करोड़ विस्तारवाला है और उसका एक-एक अक्षर मनुष्योंके बड़े-से-बड़े पापोंको नाश करनेवाला है'॥ १॥

ध्यात्वा नीलोत्पलश्यामं रामं राजीवलोचनम्।
जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमण्डितम्॥ २॥
सासितूणधनुर्बाणपाणिं नक्तंचरान्तकम्।
स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम्॥ ३॥
रामरक्षां पठेत्प्राज्ञः पापघ्नीं सर्वकामदाम्।
शिरो मे राघवः पातु भालं दशरथात्मजः॥ ४॥

'जो नीलकमलदलके समान श्यामवर्ण, कमलनयन, जटाओंके मुकुटसे सुशोभित, हाथोंमें खड्ग तूणीर, धनुष और बाण धारण करनेवाले राक्षसोंके संहारकारी तथा संसारकी रक्षाके लिये अपनी लीलासे ही अवतीर्ण हुए हैं, उन अजन्मा और सर्वव्यापक भगवान् रामकी, सीताजी और लक्ष्मणजीके सहित याद कर प्राज्ञ पुरुष इस सर्वकामप्रदा और पाप-विनाशिनी रामरक्षाका पाठ

करे। वे कहें कि 'राघव मेरे सिरकी और दशरथात्मज मेरे ललाटकी रक्षा करें'॥ २—४॥

कौसल्येयो दृशौ पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुती।
घ्राणं पातु मखत्राता मुखं सौमित्रिवत्सलः॥ ५॥

'कौसल्यानन्दन वे श्रीराम मेरे नेत्रोंकी रक्षा करें। विश्वामित्रप्रिय कानोंको सुरक्षित रखें और यज्ञरक्षक श्रीराम नाक तथा सौमित्रिवत्सल मेरे मुखकी सदैव रक्षा करें'॥ ५॥

जिह्वां विद्यानिधिः पातु कण्ठं भरतवन्दितः।
स्कन्धौ दिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः॥ ६॥
करौ सीतापतिः पातु हृदयं जामदग्न्यजित्।
मध्यं पातु खरध्वंसी नाभिं जाम्बवदाश्रयः॥ ७॥
सुग्रीवेशः कटी पातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः।
ऊरू रघूत्तमः पातु रक्षःकुलविनाशकृत्॥ ८॥
जानुनी सेतुकृत्पातु जंघे दशमुखान्तकः।
पादौ विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलं वपुः॥ ९॥

'मेरी जिह्वाकी विद्यानिधि, कण्ठकी भरतवन्दित, कन्धोंकी दिव्यायुध और भुजाओंकी महादेवजीका धनुष तोड़नेवाले वीर श्रीराम रक्षा करें। हाथोंकी सीतापति, हृदयकी परशुरामजीको जीतनेवाले राम, मध्यभागकी खर नामके राक्षसका नाश करनेवाले और नाभिकी जाम्बवान्‌के आश्रयरूपी राम रक्षा करें। मेरी कमरकी सुग्रीवके स्वामी, सक्थियोंकी हनुमत्प्रभु और ऊरुओंकी राक्षसकुल-विनाशक रघुश्रेष्ठ श्रीराम रक्षा करें। मेरे जानुओंकी सेतुकृत्, जंघाओंकी रावणको मारनेवाले, चरणोंकी विभीषणको ऐश्वर्य देनेवाले और वीर श्रीराम मेरे सारे शरीरकी रक्षा करें'॥ ६—९॥

एतां रामबलोपेतां रक्षां यः सुकृती पठेत्।
स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत्॥ १०॥
पातालभूतलव्योमचारिणश्छद्मचारिणः।
न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः॥ ११॥
रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन्।
नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति॥ १२॥
जगज्जैत्रैकमन्त्रेण रामनाम्नाभिरक्षितम्।
यः कण्ठे धारयेत्तस्य करस्थाः सर्वसिद्धयः॥ १३॥

'जो पुण्यपुरुष रामबलसे सम्पन्न इस रक्षाका पाठ करता है, वह दीर्घायु, सुखी, पुत्रवान्, विजयी और विनय-सम्पन्न होता है। जो जीव पाताल, पृथ्वी अथवा आकाशमें विचरते हैं और जो छद्मवेशसे घूमते रहते हैं, वे रामनामोंसे सुरक्षित पुरुषको देख भी नहीं सकते। 'राम', 'रामभद्र', 'रामचन्द्र' आदि पवित्र नामोंका स्मरण करनेसे मनुष्य पापोंमें लिप्त नहीं होता है। वह इन नामोंकी शक्तिसे भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है'॥ १०—१२॥

'जो पुरुष जगत्को विजय करनेवाले एकमात्र मन्त्र राम-नामसे सुरक्षित इस स्तोत्रको कण्ठमें धारण करता है, अर्थात् जबानी याद कर उपयोगमें लाता है, उसे संसारकी सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं'॥ १३॥

वज्रपञ्जरनामेदं यो रामकवचं स्मरेत्।
अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जयमङ्गलम्॥ १४॥

'जो मनुष्य 'वज्रपंजर' नामक इस रामकवचका स्मरण करता है; उसकी आज्ञाका कहीं उल्लंघन नहीं होता और उसे सर्वत्र जय

और मंगलकी प्राप्ति होती है'॥ १४॥

आदिष्टवान्यथा स्वप्ने रामरक्षामिमां हरः।
तथा लिखितवान्प्रातः प्रबुद्धो बुधकौशिकः॥ १५॥

'श्रीशिवजीने रात्रिके समय स्वप्नमें इस रामरक्षाका जिस प्रकार आदेश दिया था, उसी प्रकार प्रातःकाल जागनेपर बुधकौशिक ऋषिने लिख दिया'॥ १५॥

आरामः कल्पवृक्षाणां विरामः सकलापदाम्।
अभिरामस्त्रिलोकानां रामः श्रीमान्स नः प्रभुः॥ १६॥

'जो मानो कल्पवृक्षोंके बगीचे हैं तथा समस्त आपत्तियोंका अन्त करनेवाले हैं, जो तीनों लोकोंमें परम सुन्दर हैं, वे श्रीमान् राम हमारे प्रभु हैं'॥ १६॥

तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ।
पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ॥ १७॥
फलमूलाशिनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ।
पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥ १८॥
शरण्यौ सर्वसत्त्वानां श्रेष्ठौ सर्वधनुष्मताम्।
रक्षःकुलनिहन्तारौ त्रायेतां नो रघूत्तमौ॥ १९॥

'जो तरुण अवस्थावाले, रूपवान्, सुकुमार, महाबली, कमलके समान विशाल नेत्रवाले, चीरवस्त्र और कृष्णमृग-चर्मधारी, फल-मूल आहार करनेवाले, संयमी, तपस्वी, ब्रह्मचारी, सम्पूर्ण जीवोंको शरण देनेवाले, समस्त धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ और राक्षस-कुलका नाश करनेवाले हैं, वे रघुश्रेष्ठ दशरथकुमार राम और लक्ष्मण दोनों भाई हमारी रक्षा करें'॥ १७—१९॥

आत्तसज्जधनुषाविषुस्पृशावक्षयाशुगनिषङ्गसङ्गिनौ ।
रक्षणाय मम रामलक्ष्मणावग्रतः पथि सदैव गच्छताम्॥ २०॥

सन्नद्धः कवची खड्गी चापबाणधरो युवा।
गच्छन्मनोरथान्नश्च रामः पातु सलक्ष्मणः॥ २१॥
रामो दाशरथिः शूरो लक्ष्मणानुचरो बली।
काकुत्स्थः पुरुषः पूर्णः कौसल्येयो रघूत्तमः॥ २२॥
वेदान्तवेद्यो यज्ञेशः पुराणपुरुषोत्तमः।
जानकीवल्लभः श्रीमानप्रमेयपराक्रमः॥ २३॥
इत्येतानि जपन्नित्यं मद्भक्तः श्रद्धयान्वितः।
अश्वमेधाधिकं पुण्यं सम्प्राप्नोति न संशयः॥ २४॥

'जिन्होंने संधान किया हुआ धनुष ले रखा है, जो बाणका स्पर्श कर रहे हैं तथा अक्षय बाणोंसे युक्त तूणीर लिये हुए हैं, वे राम और लक्ष्मण मेरी रक्षा करनेके लिये मार्गमें सदा ही मेरे आगे चलें'॥ २०॥

'सर्वदा उद्यत, कवचधारी, हाथमें खड्ग लिये, धनुष-बाण धारण किये तथा युवा अवस्थावाले भगवान् राम लक्ष्मणजीके सहित (आगे-आगे) चलकर हमारे मनोरथोंकी रक्षा करें॥ २१॥

(भगवान्का कथन है कि) 'राम, दाशरथि, शूर, लक्ष्मणानुचर, बली, काकुत्स्थ, पुरुष, पूर्ण, कौसल्येय, रघूत्तम, वेदान्तवेद्य, यज्ञेश, पुराण-पुरुषोत्तम, जानकीवल्लभ, श्रीमान् और अप्रमेयपराक्रम— इन नामोंका नित्यप्रति श्रद्धापूर्वक जप करनेसे मेरा भक्त हजारों अश्वमेध यज्ञसे भी अधिक फल प्राप्त करता है—इसमें कोई सन्देह नहीं'॥ २२—२४॥

रामं दूर्वादलश्यामं पद्माक्षं पीतवाससम्।
स्तुवन्ति नामभिर्दिव्यैर्न ते संसारिणो नराः॥ २५॥

'जो लोग दूर्वादलके समान श्यामवर्ण, कमलनयन, पीताम्बरधारी

भगवान् श्रीरामका इन दिव्य नामोंसे स्तवन करते हैं, वे संसारचक्रमें नहीं पड़ते'॥ २५॥

रामं लक्ष्मणपूर्वजं रघुवरं सीतापतिं सुन्दरं
काकुत्स्थं करुणार्णवं गुणनिधिं विप्रप्रियं धार्मिकम्।
राजेन्द्रं सत्यसन्धं दशरथतनयं श्यामलं शान्तमूर्तिं
वन्दे लोकाभिरामं रघुकुलतिलकं राघवं रावणारिम् ॥ २६ ॥

'लक्ष्मणजीके पूर्वज, रघुकुलमें श्रेष्ठ, सीताजीके स्वामी, अतिसुन्दर, ककुत्स्थकुलनन्दन, करुणासागर, गुणनिधान, ब्राह्मणभक्त, परम धार्मिक, राजराजेश्वर, सत्यनिष्ठ, दशरथ-पुत्र, श्याम और शान्तमूर्ति, सम्पूर्ण लोकोंमें सुन्दर रघुकुल-तिलक राघव और रावणारि भगवान् रामकी मैं वन्दना करता हूँ'॥ २६॥

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥ २७॥

'राम, रामभद्र, रामचन्द्र, विधातृस्वरूप, रघुनाथ, प्रभु सीतापतिको नमस्कार है'॥ २७॥

श्रीराम राम रघुनन्दन राम राम
श्रीराम राम भरताग्रज राम राम।
श्रीराम राम रणकर्कश राम राम
श्रीराम राम शरणं भव राम राम॥ २८॥

'हे रघुनन्दन श्रीराम! हे भरताग्रज भगवान् राम! हे रणधीर प्रभु राम! आप मेरे आश्रय होइये'॥ २८॥

श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि
श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि।
श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि
श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये॥ २९॥

'मैं श्रीरामचन्द्रके चरणोंका मनसे स्मरण करता हूँ, श्रीरामचन्द्रके चरणोंका वाणीसे कीर्तन करता हूँ, श्रीरामचन्द्रके चरणोंको सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ तथा श्रीरामचन्द्रके चरणोंकी शरण लेता हूँ'॥ २९॥

माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः
स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः।
सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालु-
र्नान्यं जाने नैव जाने न जाने॥ ३०॥

'राम मेरी माता हैं, राम मेरे पिता हैं, राम स्वामी हैं और राम ही मेरे सखा हैं। दयामय रामचन्द्र ही मेरे सर्वस्व हैं, उनके सिवा और किसीको मैं नहीं जानता—बिलकुल नहीं जानता'॥ ३०॥

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम्॥ ३१॥

'जिनकी दायीं ओर लक्ष्मणजी, बायीं ओर जानकीजी और सामने हनुमान्‌जी विराजमान हैं, उन रघुनाथजीकी मैं वन्दना करता हूँ'॥ ३१॥

लोकाभिरामं रणरङ्गधीरं
राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम्।
कारुण्यरूपं करुणाकरं तं
श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये॥ ३२॥

'जो सम्पूर्ण लोकोंमें सुन्दर, रणक्रीडामें धीर, कमलनयन, रघुवंशनायक, करुणामूर्ति और करुणाके भण्डार हैं, उन श्रीरामचन्द्रजीकी मैं शरण लेता हूँ'॥ ३२॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।

वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये॥ ३३॥

'जिनके मनके समान गति और वायुके समान वेग है, जो परम जितेन्द्रिय और बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं, उन पवननन्दन वानराग्रगण्य श्रीरामदूतकी मैं शरण लेता हूँ, ॥ ३३॥

कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्॥ ३४॥

'कवितामयी डालीपर बैठकर मधुर अक्षरोंवाले 'राम-राम' इस मधुर नामको कूजते हुए वाल्मीकिरूप कोकिलकी मैं वन्दना करता हूँ'॥ ३४॥

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥ ३५॥

'आपत्तियोंको हरनेवाले तथा सब प्रकारकी सम्पत्ति प्रदान करनेवाले लोकाभिराम भगवान् रामको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ'॥ ३५॥

भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम्।
तर्जनं यमदूतानां रामरामेति गर्जनम्॥ ३६॥

'राम-राम' ऐसा घोष करना सम्पूर्ण संसारबीजोंको भून डालनेवाला, समस्त सुख-सम्पत्तिकी प्राप्ति करानेवाला तथा यमदूतोंको भयभीत करनेवाला है'॥ ३६॥

रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे
रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः।
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम मामुद्धर॥ ३७॥

'राजाओंमें श्रेष्ठ श्रीरामजी सदा विजयको प्राप्त होते हैं। मैं लक्ष्मीपति भगवान् रामका भजन करता हूँ। जिन रामचन्द्रजीने सम्पूर्ण राक्षससेनाका ध्वंस कर दिया था, मैं उनको प्रणाम करता हूँ। रामसे बड़ा और कोई आश्रय नहीं है। मैं उन रामचन्द्रजीका दास हूँ, मेरा चित्त सदा राममें ही लीन रहे; हे राम! आप मेरा उद्धार कीजिये'॥ ३७॥

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥ ३८॥

(श्रीमहादेवजी पार्वतीसे कहते हैं—) 'हे सुमुखि! राम-नाम विष्णुसहस्रनामके तुल्य है। मैं सर्वदा 'राम, राम, राम' इस प्रकार मनोरम रामनाममें ही रमण करता हूँ'॥ ३८॥

उपर्युक्त स्तोत्रके अक्षर-अक्षरमें शक्ति भरी हुई है। पूर्ण विश्वासके साथ (मूल संस्कृत श्लोकोंका) पाठ-जप करनेसे चमत्कारी फल प्राप्त होते हैं। आप भी सिद्ध कर देखिये।*

—डॉ० रामचरण महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०

* रामरक्षास्तोत्रकी (अनुवादसहित) अलग छपी हुई पुस्तिका गीताप्रेससे मिल सकती है।

अभिभावककी त्यागभावना

जूनका महीना था। सब हाईस्कूल खुल गये। नये सत्रका पहला दिन था। विद्यार्थियोंके अभिभावक एकके बाद एक चले आ रहे थे। जिस अभिभावककी वार्षिक आय १,२०० रुपयेसे कम हो, सरकारकी ओरसे उसके बालकोंकी फीस ई० बी० सी० माफ की जाती थी। लगभग सभी अभिभावक इससे लाभ उठा रहे थे। शामतक माफी चाहनेवालोंमें जो पढ़े-लिखे थे वे माफीके फार्मपर हस्ताक्षर करके और बिना पढ़े-लिखे लोग बायें हाथके अँगूठेकी छाप लगाकर उपकार मानकर चले गये।

मेरे क्लासमें एक सिन्धी लड़की नये वर्षसे भर्ती हुई थी। स्कूलका समय पूरा होनेपर मैं हाजिरी रजिस्टर लेकर स्टाफ-रूममें आकर कुर्सीपर बैठ गयी। इतनेमें वह सिन्धी लड़की स्टाफ-रूमके दरवाजेपर दिखायी दी। 'कैसे आना हुआ बहिन!' मैंने सीधा प्रश्न किया। उसने जरा सकुचाते हुए कहा—'साहेब! मेरे पिताजीने पुछवाया है कि मैं यदि एक सप्ताह बाद फीस भरूँ तो कोई आपत्ति है?' मैंने नकारमें सिर हिलाते हुए कहा—'नहीं, आपत्ति नहीं है, परंतु तुम पिताजीको कल आते समय स्कूलमें साथ ले आना।' 'अच्छी बात है'—कहकर लड़की चली गयी।

दूसरे दिन एक अधेड़ सद्गृहस्थ मेरे आफिसमें आये, वह लड़की साथ थी। इससे मैंने अनुमान कर लिया कि ये उसके पिता होंगे। आते ही वे दोनों हाथ जोड़कर मुसकराते हुए खड़े हो गये। उनकी पोशाक देखनेसे कल्पना होती थी कि उन्हें कोई अफसर होना चाहिये।

मैंने कहा—'देखिये, सरकारकी ओरसे यह घोषणा की गयी है कि जिस अभिभावककी वार्षिक आय १,२०० रुपयेसे कम हो, उसके बच्चोंकी ई० बी० सी० फीस माफ कर दी जाय। आपकी इच्छा बच्चीकी फीस माफ करानेकी हो तो मैं फार्म दूँ।'

मेरा यह स्पष्टीकरण सुनकर आजतक किसी भी अभिभावकके मुखसे नहीं सुने गये थे, ऐसे वचन जैसे उन्होंने कहे—'नहीं जी, मेरा मासिक वेतन दो सौ रुपये हैं।' कुटुम्बके आधे दर्जन सदस्योंका भरण-पोषण इसी आयसे करता हूँ। इधर मेरे लिये सब नया है। अतः पहला वेतन सब घरकी चीजोंके जुटानेमें खर्च हो गया। अब चार दिनोंके बाद वेतन मिलेगा। आपको एतराज न हो तो—'नहीं, नहीं, मुझे कोई एतराज नहीं है।' उनके कथनका मर्म समझकर मैंने उनका वाक्य पूरा नहीं होने दिया। 'परंतु बड़े-बड़े जमींदार और सेठलोग भी अपने बच्चोंकी फीस माफ करवानेके फार्म भर गये हैं', मैंने कहा।

वे बोले—'ठीक है, वे सरकारकी आँखोंमें धूल झोंककर ठग सकते हैं, लेकिन मैं अपनी आत्माको कैसे धोखा दूँ? इस प्रकार प्राप्त की हुई विद्या व्यर्थ होती है। ईमानदारीका निर्भय जीवन ही सच्चा जीवन है।' मैंने उनकी आँखोंमें ईमानदारीके स्पष्ट दर्शन किये।

इतनेमें प्रार्थनाकी घंटी सुनायी दी। वे अभिवादन करते हुए उठ खड़े हुए और उन्होंने मेरे पाससे जानेकी अनुमति चाही। उन्हें जाते देखकर मेरा मन उनके प्रति नमित हो गया।

(अखण्ड आनन्द)

—मफतलाल सथवारा

गिद्धनीका सतीत्व

जिला सीतापुर तह० मिश्रितके अन्तर्गत पवित्र तपोभूमि नैमिषारण्य एवं मिश्रित तीर्थके बीचमें एक गौआपुर नामक ग्राम है। खेतमें फसल कट जानेपर वर्तमान समय मैदान हो गया है। उसी स्थानकी यह सत्य एवं रहस्यपूर्ण घटना है। गत वैशाख पूर्णमासी शनिवार तदनुसार दिनांक १९ मई सन् १९६२ ई० को खेतमें एक मृतक पक्षी गृद्ध पड़ा देखा गया, जिसपर मादा पक्षी गिद्धनी उस मृतक शवको अपने पंखोंसे ढके बैठी थी। ग्रामके कुछ बच्चोंने उस गिद्धनीको ईंटके ढेलोंसे मारा। पर वह अपनी जगहसे नहीं हटी। तब बच्चे पकड़कर उसे ग्राममें ले आये, परंतु ग्रामके निवासियोंने उसे छुड़वा दिया। वह गिद्धनी वहाँसे छूटकर पुनः मृतक गिद्धके शवके पास पूर्ववत् बैठ गयी। जब तीन-चार दिनोंतक यही क्रम रहा तो ग्रामके मनुष्य जाकर कौतूहलसे चरित्र देखने लगे। उस पक्षिणीका यह नियम था कि यदि कोई उसे छू लेता था तो वह स्नान करके पुनः अपने स्थानपर पूर्ववत् बैठ जाती थी। स्नानके लिये नहर समीपमें थी। उसने खाना और पीना बिलकुल छोड़ दिया था। परंतु यदि कोई मनुष्य आकर उसे यह कहता कि 'यह गंगाजल है' तो वह कुछ विचारकर गंगाजलको ग्रहण कर लेती थी। कोई झूठ ही पानीको गंगाजल कह देता तो उसे नहीं पीती थी। उस मृतक गिद्धके शवसे दुर्गन्ध भी नहीं आती थी। उसे देखने सभी प्रकारके लोग सरकारी उच्चाधिकारी भी आये, अनेकों प्रकारसे उसकी परीक्षा ली गयी;

परंतु वह परीक्षामें सफल हुई। इस प्रकार दो सप्ताह व्यतीत होनेपर गत ज्येष्ठ अमावस्या शनिवार दिनांक २ जून सन् ६२ ई० को चार बजे उस पक्षिणीने भी प्राण त्याग दिये। प्रातः ज्येष्ठ प्रतिपदाको सर्वसम्मतिसे चिता बनाकर विधिपूर्वक दोनोंका दाह-संस्कार किया गया।

—ब्रह्मानन्द ठेकेदार

भागवतसे प्राणरक्षा

सन् १९६१ के जुलाई मासमें हैदराबाद (आन्ध्र-प्रदेश)-में वहाँ भक्तोंके विशेष आग्रहसे काशीस्थ हथियाराम मठके अध्यक्ष महामण्डलेश्वर श्रीस्वामी बालकृष्ण यतिजी महाराजकी भागवतकी कथा और गीता-प्रवचनसे प्रभावित होकर उन्हींके तत्त्वावधानमें हैदराबादके घासीबाजारके वस्त्रव्यापारियोंने हैदराबादमें गत वर्ष सितम्बरमें विश्वकल्याणार्थ 'श्रीविष्णुमहायज्ञ' का आयोजन किया था। उसके आचार्यत्वके लिये मैं काशीसे १० सितम्बर १९६१ को 'काशी-बम्बई एक्सप्रेस' से फर्स्टक्लासमें रवाना हुआ। मैं कहीं भी बाहर जाता हूँ तो मेरे साथ बहुत-सी पुस्तकें होती हैं, जिनके लिये एक स्वतन्त्र बक्स होता है। पुस्तकोंका उपयोग मैं रेलमें भी किया करता हूँ। मेरे डिब्बेमें फर्स्टक्लासकी एक ही सीट थी। मैं डिब्बेमें एकाकी ही था। बड़ी शान्तिसे ट्रेनमें पुस्तक पढ़ रहा था।

मुझे भलीभाँति स्मरण है कि रात्रिको लगभग बारह बजे जब गाड़ी कटनी स्टेशनसे रवाना हुई तो उस समय मन्द-मन्द रिमझिम वर्षा हो रही थी, जो ट्रेनकी द्रुत गतिके कारण वायुसे टकराती हुई ट्रेनके झरोखोंमें प्रवेश कर मेरे मस्तिष्कप्रदेशको विशेषरूपसे स्पर्श करने लगी, जिससे मुझे झपकी आ गयी। डेढ़ बजे जबलपुर स्टेशनपर आवश्यकतासे अधिक मेरे डिब्बेका दरवाजा खटखटाया गया, जिससे मेरी नींद उचट गयी। मेरे डिब्बेके सामने दो कथित सभ्य नवयुवक खड़े थे, जो मेरे डिब्बेमें घुसना चाहते थे। मैंने

बार-बार मना किया कि 'इसमें सिर्फ एक ही सीट है, आपलोग दूसरे डिब्बेमें जायँ।' वे बोले—'हमारे पास फर्स्टक्लासकी टिकट है। फर्स्टक्लासके दूसरे डिब्बेमें जमीनमें खड़े होनेतककी भी जगह नहीं है। बहुत जरूरी कार्यसे सिर्फ दो ही स्टेशन जाना है। आपको किसी प्रकारका कष्ट नहीं देंगे। बर्थके नीचे जमीनपर बैठ जायँगे।' मैंने दोनोंकी नम्रतापूर्ण बातें सुन डिब्बेका दरवाजा खोल दिया और वे दोनों नवयुवक डिब्बेमें घुस गये। उनमेंसे एकने एक तौलिया जमीनपर बिछा दिया और उसपर दोनों बैठ गये। उनके पास बिस्तर, बक्स आदि कोई सामान नहीं था। सिर्फ एकके पास चमड़ेका एक छोटा-सा 'बेग' था।

गाड़ी जबलपुरसे चल दी। मैं लाइट बन्द करवाकर निश्चिन्त हो अपनी सीटपर लेट गया। सम्भवतः एक घण्टा बीता होगा कि उन दोनों नवयुवकोंकी धीमी-धीमी बातोंकी सुरसुराहटसे और बिजलीकी बत्ती जलानेसे मेरी नींद उचट गयी, मैं ज्ञानपूर्वक अचेतन-सा पड़ा बातें सुनने लगा। एक बोला—'लालाजीके बक्समें बहुत वजन है। मालूम होता है, सोने-चाँदीके व्यापारी हैं। बक्समें सोने-चाँदीके सिक्के होंगे; जिन्हें लेकर लालाजी व्यापारार्थ बम्बई जा रहे हैं।' दूसरेने कहा 'देखते क्या हो, जल्दीसे बेगमेंसे 'छूरा' निकालकर इनका काम तमाम करो और बक्स लेकर अगले स्टेशनपर उतर भागो।' पहला बोला—'जल्दी मत करो' समझ-बूझकर मारा जाय। एक बार हमलोगोंसे नासमझीके कारण एक आदमीकी हत्या हो गयी थी, किन्तु उसके पास कुछ नहीं निकला। इस बार फिर वैसी ही भूल न हो जाय।'

मैं पड़ा-पड़ा यह भयंकर विचार-परामर्श सुन किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया और तरह-तरहकी बातें सोचने लगा।

नहीं।' मैंने कहा—'यदि जिला नहीं सकते तो किसीको मारनेका भी अधिकार नहीं। अतः खुद खुदा बनकर पाप न बटोरिये। किसीका उपकार नहीं कर सकते तो किसीकी हानि भी न किया करें। प्राणिमात्रपर दया और प्रेमभाव रखते हुए सबको अपने-जैसा समझें। लूट-पाट एवं जीवहत्या-जैसे जघन्य पापोंसे दूर रहकर सर्वदा मानवताका आदर करें। यही मेरा उपदेश है।'

दोनों नवयुवक नीची गर्दन किये विनम्र भावसे बोले—'पण्डितजी! खुदाकी कसम, हमलोग आजसे आपके बतलाये रास्तेपर चलेंगे और जीवनभर लूट-पाट और कतल नहीं करेंगे।' इतनेमें ही 'पिपरिया' स्टेशन आ गया। वे दोनों नवयुवक मुझको हाथ जोड़कर स्टेशनपर उतरकर चले गये।

उनके जानेके बाद देरतक मेरे मनमें तरह-तरहके विचार उठते रहे। अन्तमें इसी निष्कर्षपर पहुँचा—'जो मनुष्य '**वासुदेवः सर्वमिति**' (गीता ७। १९)-का सिद्धान्त मान भगवान्पर पूर्ण भरोसा रखते और सदा उनका स्मरण-चिन्तन करते हैं, उनकी वे सर्वत्र रक्षा करते हैं। मेरे पास भगवत्स्वरूप 'भागवत' की जो पुस्तक थी, वही मेरे लिये हितकर सिद्ध हुई, जिसको देख उन कलिकलुषित आततायी नवयुवकोंके विचारमें अद्भुत परिवर्तन हो गया, जिससे मेरे प्राणोंकी रक्षा हुई।'

क्या अब भी '**कलौ भागवती वार्ता**', '**कलौ भागवतं स्मृतम्**' की सत्यताके लिये किसी प्रमाणकी आवश्यकता है?

—याज्ञिक सम्राट् श्रीवेणीराम शर्मा गौड़, वेदाचार्य

मर जाता, तब तो सदाके लिये अमर ही हो जाता

कई वर्षों पहलेकी बात है। भगवती कामाख्यादेवीके दर्शनार्थ मैं गौहाटी (आसाम)-में अपने गाँवके एक परिचित सज्जनके यहाँ ठहरा हुआ था। एक दिन एक आदमीने आकर मेरे उन परिचित सज्जनसे कहा—'आपको पता तो होगा ही, मेरी दूकान तो उस दुष्टने कुर्क करवा दी।' इसपर मेरे परिचित भाईने उनसे कहा—'रुपये तो आप दे चुके थे न?' उसने कहा—'जी हाँ, रुपये तो मैंने दे दिये थे, पर उस समय हैंडनोट वापस नहीं लिये थे। विश्वास था ही; सोचा, पीछे ले लेंगे। मेरे सीधेपनका यह नतीजा है कि दस हजार रुपयेकी नालिश करके मेरी दूकानतकको कुर्क करवा दिया गया। मैं कुछ रुपयोंकी आवश्यकता होनेसे आपके पास आया हूँ।' उनकी यह बात सुनकर मेरे परिचित सज्जन मुझसे कहने लगे—"देखिये पण्डितजी! हमलोग पूरी तरह जानते हैं कि रुपये दे दिये गये हैं। खुद महाजनका एक नौकर ही मुझसे कह रहा था कि 'हमारे मालिक बड़े बेईमान हैं', हमलोग क्या करें। ये बनारसके रहनेवाले बड़े ही सज्जन हैं। इनका नाम श्री.......गुप्त है।" इस प्रकार मुझसे कहकर उनसे कहा—'गुप्तजी! अभी आप जाइये, हम यथाशक्ति अवश्य आपकी मदद करेंगे। इस समय इन पण्डितजीके साथ बाबा उमानाथजीके दर्शन करने जा रहे हैं। आप शामको अवश्य मिलियेगा।' इसपर गुप्तजीने कहा—'चलिये, हम भी चलते हैं।' तदनन्तर हम तीनों श्रीमहादेवजीका नाम लेकर चल पड़े। ब्रह्मपुत्रमें नावपर बड़ी भीड़ थी, मल्लाह डर रहा था। पर महादेवजीके दर्शनार्थ जानेवाले यात्री निडर-से थे।

कुछ देर नावके चलनेपर गुप्तजीने चुपकेसे मेरे कानमें कहा—'पण्डितजी! हाथमें चाँदीका जलपात्र लिये जो दीख रहे हैं, यही मेरे वे महाजन बाबू हैं और पीली साड़ी पहने गोदमें बालक लिये जो देवी बैठी हैं, वे इनकी पत्नी हैं।' महाजन बाबूका शील-स्वभाव जाननेके लिये मैंने उनसे पूछा—'आप क्या नित्य महादेवजीका पूजन करने जाया करते हैं?' उन्होंने गुप्तजीकी ओर देखकर अभिमानसे कहा—'नहीं, यह तो एक मुकदमेमें हमें दस हजारकी डिग्री मिली है, उसीके उपलक्ष्यमें हम सपरिवार बाबाका पूजन करने जा रहे हैं।' मैं चुप रह गया।

ब्रह्मपुत्रकी धारामें यह सुन्दर पहाड़ कितना आनन्द दे रहा है, मैं यह सोच रहा था कि नाव पहाड़के समीप पहुँच गयी। लोग उतरनेके लिये जल्दी करने लगे। संयोगवश महाजन बाबूकी पत्नीका पैर फिसल गया और वे नीचे गिर गयीं। इसी बीच बच्चा उनके हाथसे छूटकर जलमें गिर पड़ा और बीच धारमें बह चला। माता-पिता रोने-चिल्लाने लगे, परंतु किसीसे कुछ करते न बन पड़ा। यह लड़का जिस समय गिरा था, उसी समय उसके साथ ही एक युवक ब्रह्मपुत्रमें कूद गया था। कुछ ही क्षणोंमें कुछ दूर जलमें देखा गया कि तरुण अपने एक हाथसे पानी मार रहा है और दूसरे हाथसे ऊपर लड़केको थामे हुए है। वह अब-तब डूबनेकी स्थितिमें है, परंतु किनारेकी ओर जानेके लिये जी-तोड़ कोशिश कर रहा है।

संयोगवश एक मल्लाहकी नजर उसपर पड़ी, वह तुरंत नाव लेकर वहाँ पहुँच गया और लड़केसहित उस युवकको नावपर चढ़ा लिया। इतनेमें कई नाविक और भी पहुँच गये। नाव किनारेपर आ लगी। सैकड़ों आदमी इकट्ठे हो गये। उन दोनोंको बचानेके लिये डॉक्टरोंने उपचार शुरू कर दिये। दोनोंके

पेटमें जल बहुत कम गया था, अतः उपचार किये जानेपर दोनों ही बहुत शीघ्र स्वस्थ हो गये।

महाजन बाबू और उनकी पत्नी दोनों उस साहसी वीर युवकको बार-बार धन्यवाद दे रहे थे। वह युवक वे गुप्तजी ही थे, जिनपर इन महाजनने झूठा मुकदमा चलाकर डिग्री करवायी थी। महाजनकी पत्नीने अपने पतिसे कहा—'देखिये! ऐसे परोपकारी आदमीका आपने सर्वस्व हरण कर लिया। अब आप डिग्रीके रुपये तो छोड़ ही दीजिये, साथ ही पाँच हजार रुपये पुरस्कारके और दीजिये। इन्होंने अपने प्राण खतरेमें डालकर बच्चेकी जान बचायी है। हमलोग इन परोपकारी युवकसे इतना देकर भी उऋण नहीं हो सकते।'

उनकी यह बात सुनते ही हमारे गुप्तजी उनसे बोले—'देवीजी! मैंने पुरस्कार पानेके लिये यह काम नहीं किया है। मरते प्राणीको बचानेकी कोशिश करना मानवधर्म है, मैंने वही किया है।' इसके पश्चात् महाजन बाबू तथा उनकी पत्नी दोनों ही रुपये लेनेके लिये गुप्तजीसे बड़ा आग्रह करने लगे, परन्तु उन्होंने कुछ भी लेना स्वीकार नहीं किया। इसके बाद महाजन बाबू डिग्रीके रुपये छोड़ देनेका विचार लोगोंको सुनाकर अपने घर लौट गये। हम तीनों भी लौटकर अपने स्थानकी ओर चले। रास्तेमें मैंने गुप्तजीसे पूछा—'ऐसे बेईमानके लिये आपने यह काम क्यों किया?' वे बोले—'बेईमान तो वह है, उसका लड़का तो बेईमान नहीं है।' इसपर मैंने कहा—'अगर आप मर जाते?' उन्होंने कहा—'मर जाता तब तो जगत्‌में जन्म लेकर सदाके लिये अमर हो जाता। मानव-जन्म सफल हो जाता। मनुष्यका प्रधान धर्म ही है परोपकार करना।'

—पं० रामविलास मिश्र, कथावाचक

चाँदनीके चार दिन

भूखसे पीड़ित व्यक्ति क्या नहीं करता? दुर्दिनोंके फेरसे ऐसे मौकोंपर कुछ व्यक्ति चोरी करनातक बुरा नहीं समझते, अवश्य ही कुछ गिने-चुने ऐसे भी होते हैं, जिन्हें मरना मंजूर है, लेकिन बुरा काम करना पसंद नहीं।

कालिया दूसरी प्रकारके व्यक्तियोंमेंसे ही था। माँ-बापका प्यार उसे नसीब नहीं हुआ। भाईके प्रेमसे भाभीने वंचित कर दिया। जिसका अपना कोई न हो, उस अभागेको अपनी लड़की देना भी कोई पसंद नहीं करता। संसारमें उसका कोई नहीं था, जिसे वह अपना कहकर दुःख-सुखकी बात कह-सुन सके। बीस साल पुरानी एक जर्जर साइकिल, दस जगह टाँके लगे हुए धोतीके दो टुकड़े, एक जोड़ी फटी कमीज, टूटा तवा और कुछ फूटे बर्तन—यही उसकी सम्पत्ति थी। बाप-दादाओंकी बनायी हुई झोपड़ीका कोना ही उसकी दुनिया थी।

वह गरीब था लेकिन बेईमान न था। जब उसे कहीं सहारा न मिला तो उसने दूध बेचनेका निश्चय किया। किसी दयालुकी मददसे उसने दूधका एक छोटा-सा बर्तन लिया और अपना धंधा शुरू कर दिया।

दूध बेचते-बेचते कालियाको पाँच साल हो गये। उसकी ईमानदारी और भलमनसाहतने लोगोंके हृदयोंमें अच्छा स्थान पा लिया था। समयने पलटा खाया। कालियाकी ईमानदारीने साथ दिया। अब वह दो-चार गाय-भैंसोंके दूधपर ही निर्भर नहीं था, लगभग पचास गाय-भैंसोंका दूध नित्य गाँवसे शहर कालियाके हातेमें पहुँच जाता था। चार नौकर थे और दूध ले जानेके लिये

एक कार भी थी। कालिया, कालियासे कालीचरन और कालीचरनसे अब वह बौहरे कालीचरनके नामसे सम्बोधित किया जाने लगा था। भाई-भाभीने भी आना शुरू कर दिया था।

पेटकी भूख तो शान्त हो गयी; किंतु पैसेकी भूख बढ़ने लगी और बढ़ती ही गयी। कभी पूरी न होनेवाली तथा आहुति पड़नेपर आगकी तरह अधिक भड़कनेवाली सदा अतृप्त तृष्णाकी आग जल उठी। बौहरे कालीचरन अब चार पैसेकी बचतसे संतुष्ट न होते थे। प्रतिदिन चालीस-पचास रुपयेसे कम बचत नहीं थी, फिर भी उनको संतोष न था। संतोषके सुखका स्थान असंतोषकी ज्वालाने ले लिया था। पहले उनको दो रोटियोंकी भूख थी, अब सबसे बड़ा सेठ बननेकी लालसा। 'पैसेकी लालसा ही पापकी जननी है!'

विचारोंकी दुनिया कितनी अस्थायी किंतु कितनी आकर्षक होती है? शीघ्र ही हजारपती, लखपती और तत्पश्चात् करोड़पती बननेकी योजनाएँ बन गयीं और उन्हींके अनुसार कार्य प्रारम्भ हो गया। किंतु बौहरे कालीचरनकी साख बाजारमें इतनी बँधी हुई थी कि किसीको भी यह कहनेका साहस नहीं हुआ कि उसके दूधमें मिलावट आने लगी है।

व्यापार बढ़ता ही गया। दस वर्षके थोड़े-से ही समयमें बहुत अच्छी आमदनी होने लगी थी। पैसे भी काफी इकट्ठे हो गये थे। कालीचरनका विवाह हुए दो साल हो चुके थे और एक बच्चा भी मनबहलावके लिये था। अच्छे रईसोंमें उठना-बैठना था। भाई भी ढाई सौ रुपये मासिककी अच्छी भली नौकरी छोड़कर बहती गंगामें हाथ धोने आ गये थे। एक अच्छा परिवार बन गया था, जिसकी समाजमें इज्जत थी और बड़ोंमें गिनती। पानीके पैसेने बालू और मिट्टीकी बड़ी-बड़ी दीवारें खड़ी करके सबको घेर लिया था। बौहरे कालीचरन पिछले दिनोंको पूर्णतया

भूल चुके थे। वह पुरानी साइकिल और टूटी हुई केन कोनेमें पड़ी अब भी बौहरे कालीचरनको याद दिलाना चाहती थी कि तुम्हारे वैभवमें उनका भी कुछ हाथ है, किंतु कालीचरनका ध्यान उधर वर्षोंसे नहीं गया था।

आज श्राद्धपक्षकी अमावास्या है। आधा पानी और आधा दूध भी मिल जाय तो सौभाग्य है, क्योंकि लेनेवाले निराशासे बच जाते हैं और देनेवाले आर्थिक लाभ उठा लेते हैं ! हर दूधवालेकी दूकानपर एक लंबी लाइन सुबहसे तैयार रहती है। रेलके टिकटघरकी खिड़कीपर इतनी लंबी लाइनमें खड़ा होनेपर यदि टिकट न भी मिले तो इतना अफसोस नहीं होता जितना इस दिन दूध न मिलनेका दुःख होता है। टिकट तो दूसरे दिन भी मिल सकता है; किंतु यहाँ तो ठीक एक सालकी जाती है और उसपर भी पितरोंकी नाराजीका डर बना रहता है। बौहरे कालीचरन चाहे कुछ भी हो, लेकिन समयकी पाबंदीको अपना पहला धर्म समझते थे। किसी कारणवश जब गाँवमें ही उन्हें आधे घंटेकी देरी हो गयी तो, उन्होंने ड्राइवरको तेजीसे चलनेको कहा और कार हवासे बातें करती हुई आगे बढ़ गयी। रास्तेमें एक बरसाती पानीके गड्ढेके अतिरिक्त कहीं नहीं रुकी और दस-पंद्रह मिनटके हेर-फेरसे शहरमें जा पहुँची।

कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि मेंढकी, जिसका कोई अस्तित्व नहीं, इतने बड़े वैभवको नष्ट करनेपर तुल जायगी। बौहरे कालीचरन दूधको छानना जल्दीमें भूल गये तो कोई आश्चर्य नहीं, किंतु सेठजी बिना छाने दूध लेना धर्मविरुद्ध समझते थे। दूध छानते-छानते दूधमें एक छोटी-सी मेंढकी निकलकर अपनी मूक वाणीमें कह रही थी कि बौहरे कालीचरनने दूधमें पानी मिलाया है और वह भी गंदे गड्ढेका।

पानीसे पितृगण संतुष्ट रह सकते थे, किंतु गड्ढेके पानीसे नहीं। सारी भीड़ गालियाँ देती हुई दुःखी होकर तितर-बितर हो गयी। बौहरे कालीचरन दूधको न छाननेपर पछता रहे थे। दूकानदार मन-ही-मन खुश था कि उसे कालीचरनके पिछले दो हजार रुपये हड़पनेका स्वर्ण-अवसर बड़ी आसानीसे हाथ लगा था।

पानीकी कमाई पानीकी भाँति बहने लगी। आये दिन जुर्माना होने लगा। जुर्माना देते-देते और जुर्माना देनेवालोंको खुश करते-करते उसका सब वैभव मिट गया, लेकिन जुर्माना होना बंद न हुआ। कार बिकी, मकान गिरवी रखा, औरतके गहने गये, फिर भी जुर्मानोंका अन्त न हुआ। अन्तमें जुर्माना न दे सकनेपर कालीचरनको छः महीनेकी कड़ी सजा हो गयी।

× × × ×

आज छः महीनेतक जेलकी रोटियाँ खाकर कालीचरन वापस लौटे तो न उनके भाई-भाभी मिले और न उनके मित्र-दोस्त। भाईने नौकरी ढूँढ़ ली और बीबी अपने बापके पास चली गयी थी। कौन जाने वह आ भी पायेगी या नहीं? बड़े मकानमें कोई और ही रह रहा है, किंतु झोंपड़ीके कोने अब भी खाली हैं। सबने साथ छोड़ दिया, किंतु पुरानी केन और टूटी साइकिल अब भी साथ देनेको तैयार थीं। कालिया उसी स्थानपर आ गया है, जहाँ उसने चलना प्रारम्भ किया था। दूसरे दिनसे उसने अपनी जीवनयात्राका दूसरा चक्कर प्रारम्भ कर दिया है, किंतु यह अज्ञात है कि इस बार वह कहाँ अपनी यात्रा समाप्त करेगा? चार दिनकी चाँदनीमें जो कुछ प्राप्त हुआ था, वह अन्धकारमें छिप गया है। कालिया उसकी खोजमें है। पता नहीं खोज पायेगा या नहीं!

—बैजनाथ शर्मा, एम्० ए०, एम्० एड्०, साहित्यरत्न

जैसी ईश्वरकी इच्छा

कुछ समय पूर्व कानपुरमें एक अत्यन्त करुण घटना हो गयी। एक विधवा माताके इकलौते पुत्रको कुछ ही क्षणोंमें कालने हड़प लिया। आध घंटे पहले जिस घरमें आनन्द उमड़ रहा था, वहाँ शोककी गहरी घटा छा गयी। माताको बड़ी खुशी थी। दूसरे दिन तो बहू आनेवाली थी। पुत्रके भी उमंगका पार नहीं था। दुपहरको पुत्र बाहरसे घर लौटा। माताने बड़े उल्लाससे रसोई बनायी। भोजन परोसा। इतनेमें लड़केने कहा—'अभी दस मिनटमें आता हूँ—मेरे मित्रसे मिल आऊँ।' माताने बहुत समझाया—'परोसी थाली छोड़कर नहीं जाया जाता, यह अपशकुन माना जाता है।' पर भावीकी बात—लड़का न माना, न माना। घरसे निकलनेके पाँच ही मिनट बाद वह रास्ता लाँघ रहा था कि एक ट्रकके झपेटेमें आ गया और बस वहीं उसके राम रम गये।

ट्रक चलानेवाला सिख था, तुरंत दौड़कर घर गया। यों हाँफते-हाँफते आते देखकर सिखकी माताने पूछा—'क्या बात है?' थोड़ी देरमें सारी बात समझमें आ गयी। सिखने माँसे खानेको माँगा। माताने एक ही उत्तर दिया—'जबतक उस लड़केके पास न जायँ तबतक तेरे और मेरे लिये अन्न-जल हराम है।' सिख और उसकी माता दोनों मरनेवाले लड़केके घर पहुँचे। पत्थरका हृदय भी पिघल जाय उस घरका यह हाल था। सिखकी माताने रोते-रोते कहा—'बहिन! तेरे लालको मौतके

घाट उतारनेवाला मेरा बेटा है। यह तेरे सामने है। इसे जो कुछ दण्ड देना हो, दे दे।'

मृतककी माताने इतना ही जवाब दिया—'बहिन! तेरा बेटा सो मेरा बेटा। अब एकके बदले इसके दो माँ हो गयीं। बाकी तो ईश्वरकी ऐसी ही इच्छा थी, तू या मैं क्या कर सकती हैं।' वहाँ इकट्ठे हुए लोग इस दृश्यको देखकर आश्चर्यमें डूब गये। और मृतककी आत्मा भी—अपनी जननीके इस दिव्य त्यागको देखकर अवश्य पुलकित हुई होगी। उस सिख ड्राइवरने इस दूसरी माँको जीवनभर सँभालनेका वचन दिया।

(अखण्ड आनन्द)

—जेठालाल कानजी शाह

श्रीरामरक्षास्तोत्रके पाठसे अंग-प्रत्यंग सुरक्षित

सन् १९५७ की बात है। कुवार महीनेमें गाँवमें मेरे चाचाका देहान्त हो गया था। हमलोग उनकी तेरहीपर गये थे। सब काम हो जानेपर हमारे लौटनेका प्रोग्राम बना। प्रातःकाल नहानेके समय नित्यके अभ्यासके अनुसार रामरक्षाका पाठ हो गया और हमलोग वहाँसे बरहजके स्टेशनको चल दिये। गाड़ी आयी। वहाँ बहुत ही कम गाड़ी ठहरती है। मेरे पतिदेवकी तबीयत कुछ खराब थी, अतः उन्हें पहले चढ़ा दिया। फिर लड़की चढ़ गयी। जब मैं चढ़ने लगी, तब गाड़ी चल दी। मेरा एक हाथ लड़कीके हाथमें था, दूसरेसे मैंने गाड़ीका हैंडल पकड़ रखा था। पर मेरा पैर गाड़ीकी पटरीसे फिसल गया। लड़की मेरा बोझ सँभाल नहीं सकी; उसके हाथसे मेरा हाथ छूट गया और मेरे दूसरे हाथसे हैंडल छूट गया। मैं सीधी पहियोंके पास पहुँच गयी और एक फर्लांगतक नीचे झूलेकी तरह झूलती रही। रेलके पहियेसे मेरा सिर आधा फुट दूर होगा। उसी अवस्थामें मैंने आँखें खोलकर देखा—गाड़ी चल रही है, पहिये घूम रहे हैं। फिर भगवान्को याद करके सोचने लगी—बीमार पतिका क्या होगा। तदनन्तर आँख खोली तो गाड़ी खड़ी थी। लोग दौड़-धूप कर रहे थे। मेरी बेटी रो रही थी। मुझे उन्होंने आवाज दी। मेरा पैर एक रॉडमें फँसा था जो पहियेके ऊपर लगा होता है। किसी आदमीने

गाड़ीके नीचे घुसकर मेरा पैर रॉडमेंसे निकाला। मैं बिलकुल अच्छी अवस्थामें निकल आयी। मेरा चश्मा भी ऐसे रखा था जैसे किसीने उतारकर पहियोंके बीचमें स्लीपरोंपर रख दिया हो। चूड़ी भी ठीक थी। पीठ कुछ रेलके पत्थरोंसे रगड़कर जरूर छिल गयी थी। पर और सब अंग ठीक थे। मेरा पूर्ण विश्वास है कि रामरक्षाके नित्य-पाठसे भगवान् प्रत्येक अंगकी रक्षा करते हैं। रामरक्षास्तोत्रको कण्ठस्थ किये तो मुझे बहुत वर्ष हो गये। हरेक बीमारी और परेशानीमें इससे मुझे सहायता मिलती रहती है। जबसे 'कल्याण' में इसके चमत्कारी गुणोंकी चर्चा पढ़ी है तबसे मेरी श्रद्धा और भी बढ़ गयी है। मैंने इसे नवरात्रमें सिद्ध भी कर लिया है। मेरी हाथ जोड़कर पूजनीय भाई-बहिनोंसे प्रार्थना है कि वे इससे लाभ उठावें।

—वृजरानी, डेम्पीयर नगर, मथुरा

पेट-दर्दकी चमत्कारी दवा

कुछ वर्षों पहलेकी बात है। मैं माल खरीदनेके लिये मद्रासकी ओर गया हुआ था। सेलममें मेरे पेटमें दर्द हो गया और वह स्थायी-सा बन गया। मैंने जोधपुर लौटकर करीब नौ महीनेतक वैद्यों-डॉक्टरोंके इलाज करवाये, पर जरा भी लाभ नहीं हुआ। डॉक्टरोंने जलोदरकी बीमारीकी आशंका कहकर रोगको खतरनाक बतलाया। पैसेकी तंगी थी, मैंने इलाज छोड़ दिया। तदनन्तर दर्द बहुत बढ़ गया। मैंने सोच लिया अब भगवान्के सिवा इस दर्दको दूर करनेवाला और कोई नहीं है। मैंने एक दिन घरमें ऊपर जाकर एक घण्टे नाम-जप किया। अन्तमें भगवान्से कातर प्रार्थना की। फिर नीचे आनेपर भगवत्प्रेरणासे मेरी इच्छा बाजार जानेकी हुई और मैं बाजारकी ओर चल दिया। मैं दर्दके मारे पेटपर हाथ फेरता जा रहा था। राह चलते एक अनजान व्यक्तिने पूछा—'सेठजी! पेटपर हाथ क्यों फेर रहे हैं?' मैंने नीचे बैठकर उसे सारी घटना सुनायी। वह बोला—'मैं दवाई बता रहा हूँ। सात दिनोंतक सेवन करोगे तो अच्छे हो जाओगे।' मैंने कहा—'मैं पैसेवाली बहुत दवाइयाँ करके हैरान हो गया हूँ।' उसने कहा—'मैं बिना पैसेकी दवा बता रहा हूँ।' मेरे फिर पूछनेपर उसने कहा—'मोठको पीसकर आटा बना लीजिये। फिर उस आटेकी एक मोटी रोटी बनाकर एक तरफसे सेंक लीजिये। रोटीकी कच्ची ओर तिलका तेल चुपड़कर पेटपर बाँधकर सो जाइये। फिर चार बजे उठकर

करीब आधा पाव गो-मूत्रका सेवन कीजिये। तदनन्तर गेहूँ आधा सेर चक्कीमें पीस लीजिये। यों सात दिनोंतक करनेपर भगवत्कृपासे आप ठीक हो जायँगे।' इतना कहकर वह चल दिया।

मैंने घर आकर पत्नीसे यह बात कही। उनको भरोसा नहीं हुआ, इससे एक दिन और निकल गया। दूसरे दिन मोठ पिसवाकर उसके आटेकी मोटी रोटी बनवायी और एक ओर तिलका तेल चुपड़कर उसे बाँधकर सो गया। चार बजे उठा और घनश्यामजीके मन्दिरके समीप जाकर ताजा गो-मूत्र गिलासमें लेकर पी गया। फिर घर आकर चक्कीमें गेहूँ पीसना चाहा, पर कमजोरीके कारण अकेलेसे चक्की चल नहीं पायी। तब पत्नीको साथ बैठाकर पीसा। शामको शौचके बाद चार आने लाभ मालूम हुआ। चार दिनोंमें मेरी सारी बीमारी जाती रही और भगवान्‌की कृपासे फिर अबतक उसका कहीं कोई नाम-निशान भी नहीं है।

—गोपीकिशन बिड़ला, डागाबाजार, सारडाकी गली, जोधपुर

आदर्श परोपकार और कर्तव्य-पालन

एक बार गिरीडिहके मकनपुर मुहल्लेमें एक धोबीके मकानमें एकाएक उस समय आग लग गयी, जब वह पेट्रोलसे गरम कपड़े धो रहा था। अग्निने तुरन्त प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। गिरीडिह पुलिसके हवलदार श्रीशीशनारायण सिंह अग्निकी ज्वालामें बड़ी दिलेरीके साथ कूद पड़े और घरके अन्दरसे एक बालकको आगकी लपटोंमेंसे बाहर निकाल लाये। पुलिस हवलदार और बालक दोनों जलकर घायल हो गये, लेकिन हवलदारकी हिम्मतका उपस्थित जनतापर यह प्रभाव पड़ा कि धोबीकी शेष चीजोंको जलनेसे लोगोंने बचा लिया। घायलोंको चिकित्साके अस्पतालमें भेज दिया गया।

—बल्लभदास बिन्नानी

संतकी दयालुता

चित्रकूटमें श्रीरामनारायणजी ब्रह्मचारी नामक एक प्रसिद्ध संत हो गये हैं। उनके जीवनकी दो छोटी-छोटी घटनाएँ हैं, जिनसे संत-हृदयका परिचय मिलता है। जिस समयकी घटनाका वर्णन है, संतजी चित्रकूटमें राम-शय्या (बिहाराग्राम)-के पास कुटी बनाकर रहते थे। बादमें संतजी सिरसावन चले गये थे।

कुटीमें संतजी और उनका एक ब्रह्मचारी शिष्य, दो व्यक्ति निवास करते थे। चैत्र-वैशाखके दिन थे। संतजीने पानी पीनेके लिये एक छोटी-सी कुइयाँ (मिट्टीका कच्चा कुआँ) खोद रखा था। फसल कटनी आरम्भ हो गयी थी। बिहाराके कुछ ब्राह्मणोंका खलिहान कुटीसे थोड़ी ही दूरपर रहता था। कुछ ब्राह्मण आये और खलिहान रखनेकी जगह साफ करने लगे। तत्पश्चात् खलिहानकी लिपाई प्रारम्भ हुई। खलिहान गोबरसे लीपा गया। सारा पानी आया संतजीकी कुइयाँसे और पानी लेते समय ब्राह्मणोंने बड़ी असावधानी बरती। फलस्वरूप कुइयाँका सारा पानी गोबरमिश्रित हो गया। पीनेयोग्य बिलकुल न रह गया। शिष्य ब्रह्मचारीने संतजीसे ब्राह्मणोंके कारनामे सुनाये। सुनकर संतजीने कहा—'ब्राह्मणोंसे कुछ न कहना, दूसरी कुइयाँ तैयार कर लेंगे' और उसी गरमीमें संतजी और उनके ब्रह्मचारी शिष्यने दूसरी कुइयाँ खोदकर तैयार कर ली। कुछ दिनों पश्चात् उस दूसरी कुइयाँमें भी बर्रोंने अपना छत्ता बना लिया और पानी भरते समय उड़कर काटने लगीं। ब्रह्मचारी शिष्यने फिर संतजीसे कहा,

सुनकर संतजीने कहा—'उनको मत छेड़ना, फिर दूसरी कुइयाँ तैयार कर लेंगे।' और संतजी तथा उनके ब्रह्मचारी शिष्यने उसी गरमीमें तीसरी कुइयाँ खोदकर तैयार कर डाली।

संतजी किसीसे कुछ लेते नहीं थे, सबसे अत्यन्त नम्रतापूर्वक व्यवहार करते थे। एक बार एक धनी सेठ आये और संतजीसे कुछ ग्रहण करनेका आग्रह करने लगे। संतजी अत्यन्त नम्रतापूर्वक यही कहते रहे—'किसी निर्धनको दे दो, भाई! मेरी तो सारी आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती हैं।' अन्तमें सेठने भूमिपर लेटकर प्रार्थना की, संतजी भी उसी प्रकार नम्रतापूर्वक भूमिपर लेटकर इनकार करते रहे। दृश्य दर्शनीय था*।'

—शिवगणेश पाण्डेय, बी०ए०

---

* श्रद्धेय ब्रह्मचारीजी सचमुच आदर्श संत थे। किसीसे कुछ लेते नहीं थे। आवश्यक अन्न खेती करके उपजा लेते थे। उसीसे खाने-पीने, अतिथि-सत्कार करने तथा कपड़े-लत्तेका काम चलाते। बड़े ही त्यागी, संयमी और ज्ञानी महात्मा थे। —सम्पादक

श्रीहनूमान्‌जीकी कृपा

१५ मार्चकी बात है। मैं सूती कपड़ा खरीदने मुलतानपुर जा रहा था। मुझे १,५०० रुपयोंकी जरूरत थी। जिसमें मेरे पास ८०० रु० थे। ३०० रु० मैंने अपने पड़ोसीसे लिये। अभी ४०० रु० घट रहे थे। १,५०० रु० के बिना काम नहीं चल रहा था। मैं बहुत परेशान था। इतनेमें मेरी नजर श्रीहनुमान्‌जी महाराजके चित्रकी ओर गयी। मैंने मन-ही-मन श्रीहनुमान्‌जीसे कातर प्रार्थना की। आश्चर्यकी बात कि कुछ ही समय बाद शामको चार बजे अकस्मात् एक सज्जन आये और उन्होंने ४०० रुपये गिन दिये। उनसे हमारे रुपये लेने थे। मैं आश्चर्यचकित होकर श्रीहनुमान्‌जीका परम विश्वासी बन गया।

—बाबूराम गुप्त

पिउनसे मैनेजर

कुछ वर्षों पूर्वकी बात है, मैं कलकत्तेके प्रसिद्ध काली-मन्दिरमें बैठा हुआ था। कुछ देरके बाद दो आदमी आये। एकके हाथमें एक पुस्तक और एकके हाथमें पूजाकी सामग्री थी। पुस्तकवाला आदमी भीतर मन्दिरमें जाकर पाठमें संलग्न हो गया और सामानवाला मेरे समीप आकर बैठ गया। मैंने पूछा—'आपके साथ आनेवाले कौन हैं?' उस आदमीने कहा—'इस समय इसी शहरमें एक धानकी मिलमें मैनेजर हैं।' मैंने पूछा—'इस समयका क्या अर्थ है, इससे पहले क्या थे?' इसपर उसने कहा कि 'इससे पहले ये इसी धान-मिलमें पिउन थे।' पुनः विशेषरूपसे इस विषयको मैं लिख रहा हूँ।

'मैनेजर साहब मुजफ्फरपुर जिलेके रहनेवाले हैं। इनका नाम है ×× मिश्र।' मिश्रजी इसी मिलमें उन्नीस रुपये मासिक वेतनपर पिउनका काम करते थे। आजसे आठ वर्ष पहलेकी बात है। मिश्रजी छुट्टी लेकर अपने घर जा रहे थे। रेलके जिस डिब्बेमें मिश्रजी बैठे थे उसी डिब्बेमें इनके समीप ही एक 'सेठजी' भी बैठे थे। देवघर स्टेशनपर सेठजी गाड़ीसे उतर गये और एक लाल रंगका गजिया छोड़ गये। मिश्रजीने सेठजीको पुकारा, किन्तु विशेष भीड़ होनेके कारण सेठजी सुन न सके। कोई अन्य व्यक्ति दखल न देने लगे, इसलिये मिश्रजीने उस गजियेको लेकर तुरंत छिपा दिया। कुछ देरके बाद घबराये हुए सेठजी उस डिब्बेमें आकर पूछने लगे—'भाइयो! आपलोगोंने मेरी गजिया देखा है क्या?' यह सुनकर मिश्रजीने सेठजीसे पूछा कि 'गजिया किस रंगका है और उसमें क्या चीज है?' सेठजीने बताया कि 'गजिया लाल रंगका है और उसमें दस हजारके नोट हैं, नौ

हजारके सौ-सौ रुपयेके और एक हजारके दस-दस रुपयेके हैं।' विश्वास हो जानेपर मिश्रजीने सेठजीके हाथमें गजिया देकर कहा कि 'अपने नोट गिन लीजिये। हमने तो आपको पुकारा था, किन्तु आपने सुना नहीं, हम इसी उधेड़-बुनमें थे कि क्या करें, तबतक आप आ ही गये।' फिर सेठजीने नोट गिने। नोट ज्यों-के-त्यों पूरे थे। तदनन्तर सेठजीने पाँच सौ रुपये मिश्रजीको पुरस्कार देना चाहा; किन्तु मिश्रजीने साफ इनकार कर दिया और कहा कि 'सेठजी! ये रुपये आपके थे, हमने आपको दे दिये, इसमें पुरस्कारकी कौन-सी बात है।' हम न देते तो बेईमानी थी, किसीकी चीज उसे दे देना मानवतामात्र है। इसमें बड़ाई क्या है? अन्तमें सेठजीने मिश्रजीका पूरा पता जानना चाहा; किन्तु मिश्रजीने केवल इतना ही बताया कि 'मैं मुजफ्फरपुर जिलेका रहनेवाला एक गरीब ब्राह्मण हूँ। एक धानकी मिलमें पिउनका काम करता हूँ। इससे विशेष परिचय देनेसे लाचार हूँ।' तदुपरान्त मिश्रजीको धन्यवाद देकर सेठजी चले गये और मिश्रजी भी अपने घर चले गये।

अब हम इसके दो वर्ष बादकी बात कह रहे हैं—मिश्रजी सचाईके साथ मिलमें काम कर रहे थे। ये ईमानदार, सच्चे, सहृदय, बड़े बुद्धिमान्, पढ़े-लिखे तथा कार्य-निपुण थे, भाग्यवश ही पिउनकी छोटी नौकरी कर रहे थे। किन्तु छोटेसे लेकर बड़ेतक सभी कर्मचारी इनसे कुछ नाराज रहा करते थे। इसका प्रधान कारण यह था कि इनके रहते उन लोगोंके मनमें सदैव खटका बना रहता था। वे मनमानी नहीं कर पाते थे। एक दिन एक प्रधान कर्मचारीने दो-चार कर्मचारियोंके साथ मिलके केस-बक्सका ताला तोड़ दिया। उसमेंसे पाँच हजार रुपयेके नोट निकाल लिये और मिश्रजीका नाम लगा दिया। प्रधान कर्मचारीने

अपने मेलके कुछ लोगोंसे यह कहला भी दिया कि 'इन्हें इस घरसे काँखमें कुछ दबाये निकलते, घबराये जाते हुए हमलोगोंने देखा है।' अब मिश्रजीको बचानेके लिये कोई भी उपाय न रहा।

मिलमालिकने मिश्रजीसे कहा कि 'मिश्रजी! आप तुरन्त रुपये दे दीजिये, अन्यथा आपपर पुलिससम्बन्धी कार्रवाई की जायगी।' संयोगवश इसके दूसरे दिन उपर्युक्त उन्हीं सेठका (जिनकी देवघर स्टेशनपर मिश्रजीसे भेंट हुई थी) एक कर्मचारी कार्यवश उसी मिलमें गया था, उसने सारी बातें सुनीं और लौटकर पाँच हजार रुपयेके गायब होने तथा......मिश्र पिउनपर चोरीका अभियोग लगनेकी बात सेठको सुनायी। समाचार सुनते ही सेठजी अवाक् रह गये और सोचने लगे कि 'कहीं वह अपूर्व त्यागी ब्राह्मण ही तो नहीं है। वह मिलमें पिउनका काम ही तो करता था। आजकल ऐसे सच्चे व्यक्तियोंको लोग अपना काम निकालनेके लिये द्वेषवश खासकर फँसाया करते हैं। खैर, जो हो देख ही क्यों न लें।' यों सोचकर सेठजी दस हजार रुपयेके नोट अपने पास लेकर तुरन्त उस धानकी मिलमें पहुँच गये और पता लगाकर मिश्रजीसे भेंटकर सारा हाल जान लिया। सेठजी कर्मचारियोंके षड्यन्त्रकी बात सुनकर बड़े दु:खी हुए और तुरंत मिलमालिकसे भेंट करने चले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मिलमालिकसे पूछा कि 'आपकी समझमें..........मिश्र चोर हैं क्या?' इसपर मिलमालिकने कहा कि 'इसमें क्या सन्देह है, वह अवश्य चोर है। उसे रुपये ले जाते लोगोंने देखा है। उसे समझाया जा रहा है। रुपये न देनेपर हम उसे अवश्य जेल भिजवा देंगे।' इस प्रकार रूखा उत्तर सुनकर सेठजीने पाँच हजारके नोट देते हुए कहा कि 'लीजिये आपके पाँच हजार रुपये। अब तो वह छूट सकता है न?' मिलमालिकने रुपये लेकर पूछा—'किंतु

आप ये रुपये क्यों दे रहे हैं?' 'मेरे यहाँ उसके रुपये जमा थे और मैं यह निस्संकोच कह सकता हूँ कि वह चोर कदापि नहीं है। वरं ऐसा सच्चा आदमी संसारमें मिलना दुर्लभ है। आपमें अच्छे-बुरेकी पहचान करनेकी शक्ति नहीं है—' सेठजीने कहा। मिलमालिक और कुछ बातें करनेकी बाट देखते ही रह गये और सेठजी तुरन्त वहाँसे उठकर मिश्रजीके पास चले आये। मिश्रजी इस विषयमें कहीं विशेषरूपसे पूछताछ न करें, इस अभिप्रायसे आते ही कहा कि 'आप तुरंत मेरे साथ चलिये, अब किसी प्रकारका झंझट नहीं है।'

सेठजी मिश्रजीसे यह कह ही रहे थे कि बाजारमें शोरगुल होने लगा 'चोर पकड़ा गया?' 'चोर पकड़ा गया?' इस प्रकारका शोरगुल सुनकर सेठजीने बाहर जाकर लोगोंसे पूछा, तब उन्होंने बताया कि 'नाम लगाया गया बेचारे मिश्रजीका और पकड़े गये हैं अमुक प्रधान कर्मचारीजी।' सेठजीके द्वारा पुनः विशेषरूपसे पूछे जानेपर उन लोगोंने कहा कि 'प्रधान कर्मचारीजी अपनी स्त्रीकी बीमारीका तार घरसे मँगाकर एक सप्ताहकी छुट्टी लेकर घर जा रहे थे। स्टेशनपर लोगोंकी नजर बचाकर वे बार-बार रुपयोंको देख रहे थे। मिलमें चोरी होनेका हाल पुलिसको मालूम था। अतः एक सिपाहीके मनमें शक हुआ। प्रधान कर्मचारीजी गिरफ्तार किये गये और उनके पास मिलकी मुहर लगे हुए नोट भी पाये गये हैं।'

इन सब बातोंको सुनकर सेठजी मिश्रजीको साथ लिये जो अपने घर जा रहे थे सो घर न जाकर मिलमालिकसे मिलनेके लिये चले गये। सेठजीको देखते ही मिलमालिकने बड़ी नम्रतासे कहा कि 'सेठजी! आपका कहना सत्य है, सचमुच मुझमें आदमी पहचाननेकी शक्ति नहीं है। आप रुपये ले लीजिये।' साथ ही मिश्रजीसे कहा—'मिश्रजी! आप मेरा अपराध क्षमा करें।' इसपर

‘ऋण चुका रहा हूँ’

वर्षोंसे हम उन्हें एक ही तरहका जीवन-यापन करते देख रहे हैं। प्रोफेसर होनेपर भी उनमें किसी प्रकारका आडम्बर नहीं दिखायी देता। उच्च कक्षाकी अनेक उपाधियोंके साथ असाधारण विद्वान् होनेपर भी उनके जीवनमें अद्भुत सादगी थी। धीमी चालसे चलते इन प्रौढ़ पुरुषको कोई नया आदमी देखे तो इन्हें बहुत थोड़ी आयवाला, बड़े कुटुम्बका पोषण करनेवाला, रात-दिन अदालतमें लिखने-पढ़नेका काम करनेवाला क्लर्क ही समझे। इनके बाहरी रूपको देखनेवाला इनकी आन्तरिक शक्तिसे बिलकुल अपरिचित ही रहता। इनके स्वभावकी विशेषताओंको गहराईसे देखनेवाला सहज ही आकर्षित होकर इनका अपना बन जाता।

ये स्वेच्छासे ही अविवाहित थे। इनका सारा समय अपने प्रिय विषयके अभ्यासमें ही बीतता। इनके एकाकी जीवनका रहस्य पाना सम्भव नहीं था, इनके सम्पर्कमें आनेवाले सभी लोग इतना अवश्य देख सकते कि इनके जीवनमें मिथ्या भौतिक वैभव-विलासका जरा भी स्पर्श नहीं था।

इनके निकटवर्तियोंके मनमें यह प्रश्न तो उठा करता कि इनकी आमदनी अच्छी होनेपर भी ये इस प्रकारका जीवन क्यों बिता रहे हैं; परंतु इनके आन्तरिक जीवनकी झाँकी करनेकी किसको फुरसत थी।

बार-बार पूछे जानेपर किसी धन्य घड़ीमें इनके मुखसे इनके

भूतपूर्व जीवन-सम्बन्धी कुछ उद्‌गार निकल पड़ते। इन्होंने अपने विद्यार्थी-जीवनकी दो-एक बातें बतायी थीं। इन्होंने कहा था कि इनके विद्यार्थी-जीवनमें इनके कुटुम्बकी स्थिति बहुत ही तंग थी। यहाँतक कि इनकी पढ़ाईमें भी अड़चन पड़नेकी परिस्थिति आ गयी थी। इन्हें जब मैट्रिककी परीक्षामें बैठना था, उस समय इनकी जेब बिलकुल खाली थी। ऐसी विपत्तिके समय इनके बड़े भाईने इनको कहींसे पाँच रुपये उधार लाकर दिये थे और कठिन मजदूरी करके व्याजसमेत उस ऋणको चुकाया था। भाईके इस प्रेमको ये जीवनभर नहीं भूल सके। भाईकी सन्तानोंकी उन्नतिके लिये ही इन्होंने यह वेष धारण किया था। अपनी आमदनीका अधिकांश ये उनको देते रहे। अपनी अधिकांश आवश्यकताओंको घटाकर ये अपने कर्तव्य-पालनमें अटल रहे। इनके सम्पर्कमें आनेवाले एकाध पुरुषको ही इस बातका पता लगा था। इन्होंने कहा था—'भावस्निग्ध हृदयसे दी हुई इस मूल्यवान् सहायताका ऋण अभी पूरा चुकाया नहीं गया है—चुका रहा हूँ।' भ्रातृ-प्रेमका यह उदाहरण सचमुच ही बड़ा प्रेरणादायक है।

—मनु भाई देसाई

विद्यालयकी मित्रता

हरदयालकी पत्नीका देहान्त हो गया। घरमें दो छोटे बच्चे। दो-तीन सालतक पत्नीकी टी० बी० की बीमारीमें हरदयालके पास जो कुछ था, सब खर्च हो गया, कुछ ऋण भी हो गया। सेवा करनेवाला दूसरा कोई न होनेके कारण हरदयालको घर रहना पड़ता, इससे उसकी नौकरी भी छूट गयी। गरीबी ही उसकी स्त्रीकी टी० बी० का भी प्रधान कारण था। किसी तरह पिताने बी० ए० तक पढ़ाया था। माता पहले मर गयी थी। पाँच साल हुए, पिता भी चल बसे थे। पत्नीके चले जानेपर तो वह अब सर्वथा निराश-सा हो गया था। इधर चिन्ता-कष्टके मारे उसका अपना स्वास्थ्य भी बिगड़ रहा था। नौकरी कहीं लग नहीं रही थी। घरमें कुछ भी रहा नहीं। कैसे बच्चोंको पाले, क्या करे।

एक दिन वह घरसे निकलकर कहीं नौकरीकी तलाशमें जा रहा था। एक लोहेके व्यापारीके यहाँ कुछ आदमियोंकी आवश्यकताका विज्ञापन निकला था, किसीने उसे बताया तो वह वहाँ पहुँचा। अन्दर जाकर वह वहाँके क्लर्कसे मिला। दरखास्त लिखी और उस फर्मके मालिकके पास भेज दी। हरदयाल बाहर बैठा रहा। इसी बीच मालिकने उसे अपने पास भीतर बुलाया। वह गया, फर्मके मालिकका नाम था—राजाराम। हरदयाल उनके कमरेमें जाकर खड़ा हो गया। राजाराम उसकी ओर बड़े ध्यानसे देखने लगे। फिर सहसा उठकर हरदयालके गले लगकर मिलने लगे। हरदयाल तो हक्का-बक्का-सा रह गया। राजारामने हरदयालका हाथ पकड़कर कुर्सीपर अपने पास बैठा लिया और

कहा—'भैया हरदयाल! तुम मुझे भूल गये क्या? हमलोग हाईस्कूलमें साथ पढ़ते थे। तुम मुझसे बहुत प्यार करते थे। एक दिन मेरी पेंसिल खो गयी थी, मुझे जरूरी सवाल लिखने थे। मेरा उदास चेहरा देखकर तुमने अपनी पेंसिल मुझे दे दी थी। फिर तो तुम सदा ही मुझपर बड़ा प्रेम करते थे। हाईस्कूल छोड़नेके बाद मैं अपने पिताजीके पास कलकत्ते चला गया था। वहीं मैंने बी० ए० किया। फिर यहाँ लौटनेपर मुझे भयानक चेचक निकली, उसीसे मेरा चेहरा बदल गया। इससे तुम मुझे नहीं पहचान सके! मैंने कलकत्तेसे लौटकर यह नया व्यापार किया और भगवान्की दयासे आज तुम मुझे मिल गये। मुझे इतना आनन्द हो रहा है कि मैं तुम्हें क्या बतलाऊँ।' यों कहकर हरदयालकी ओर बड़े स्नेहसे राजाराम देखने लगे। उनकी आँखोंमें आँसू छलक आये।

फिर पूछनेपर हरदयालने अपनी सारी हालत बतायी। राजाराम उनकी दुःखद स्थितिकी बात सुनकर रोने लगे और बोले—'भाई हरदयाल! तुम यहाँ रहो और इस कामको सँभालो।' मैं तुम्हारा छोटा भाई हूँ। आजसे तुम्हीं इस फर्मके मालिक हो। बहुत आग्रह करके राजारामने बच्चोंसहित हरदयालको अपने घर बुला लिया। फर्ममें उनका आधा हिस्सा कर दिया और ठीक अपने ही समान रहन-सहनसे उनको रखने लगे। हरदयाल ईमानदार तथा कार्यनिपुण थे। उनकी देख-रेखमें व्यापार और भी चमक उठा। राजारामने उनको ठीक बड़े भाईकी तरह बड़े मान-सम्मानसे रखा और अपनी स्कूलकी मित्रता तथा पेंसिलकी बात याद करके उनकी सेवा की। धन्य!

—गिरजादत्त शर्मा

ईमानदार और निर्लोभी

अभी कुछ ही दिनों पहलेकी बात है। मैं स्थानीय स्टेट बैंकमें एक सरकारी बिलके रुपयेका भुगतान लेने गया। कामकी जल्दीमें या अन्यमनस्कताके कारण मैं भूलसे कम रुपये लेकर चला आया। दूकानपर भी मैंने रुपये नहीं गिने, वैसे ही रख दिये। परन्तु शामके समय मेरी दूकानपर बैंकका पोद्दार आया और बोला कि 'बैंकका हिसाब देते समय मेरे पास रुपये अधिक हुए और जाँच करनेपर पता लगा कि आपको रुपये कम दिये गये। अतः वे बाकी रुपये देने आया हूँ—ये रुपये लीजिये।' मैं उसकी बात सुनकर दंग रह गया, उसकी ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठाको देखकर। इस बिगड़े जमानेमें, जब कि अच्छे-अच्छे प्रतिष्ठित पदाधिकारी दूसरेका धन हड़प करनेमें संकोच नहीं करते; न्यायसे हो या अन्यायसे—धन बटोरनेमें ही सब लग रहे हैं—एक मामूली हैसियतके कर्मचारीकी यह ईमानदारी वास्तवमें प्रशंसनीय है। विशेषकर ऐसी अवस्थामें जबकि वह इन रुपयोंको अपने-आप रख सकता था। भगवान् करे, हमारे देशके सब भाई इसी तरह ईमानदार और निर्लोभी हों। भुगतानके रुपये ४,५५६.१ पैसे थे।

—सागरचन्द्र अग्रवाल

हृदय-परिवर्तन

शास्त्री शंकरलाल माहेश्वरके जीवनका यह प्रसंग है। शास्त्रीजी अपनी जवान उम्रमें एक दिन घरमें पूजा-पाठ कर रहे थे। उस समय कोई आटा माँगनेवाला ब्राह्मण आया। 'नारायण प्रसन्न' शब्द सुनकर शास्त्रीजीने सोचा कि 'घरमें कोई होगा नहीं, बेचारे ब्राह्मणको बाट देखनी पड़ेगी'—वे पूजा छोड़कर बरामदेकी ओर गये तो उन्हें दिखायी दिया कि 'एक बूढ़ा ब्राह्मण नीचे माँजकर उलटी रखी हुई थाल-कटोरी लेकर उन्हें आटेकी झोलीमें डालकर जल्दी-जल्दी बाहर निकल रहा है। शास्त्रीजीने पुकारा। वह ब्राह्मण और भी जोरसे चलने लगा। तब शास्त्रीजीने बाहर निकलकर उसे वापस बुलाया। वह लौट आया। शास्त्रीजीने कहा मैं पूजामें था, इससे आपको बाट देखनी पड़ी, क्षमा करें और कुछ ठहरें तो मैं सीधा दे दूँ।' यों कहकर वे ब्राह्मणको बरामदेके झूलेमें बैठाकर स्वयं सीधा लाने जाने लगे। पर उनको रोककर ब्राह्मणने कहा—'शास्त्रीजी! मैं तो तुम्हारा अपराधी हूँ, मुझे सीधा नहीं चाहिये। मैं तो नीचे रखी हुई तुम्हारी थाली-कटोरी लेकर चल दिया था।' इतना कहकर उसने थाली-कटोरी निकालकर रख दी। शास्त्रीजीने कहा—'यह मैं जानता हूँ, पर आप मेरे अपराधी हैं, यह दुःख न करें। कोई भी मनुष्य पहले अपने प्रति अपराध करता है, इसके बाद ही वह दूसरेके प्रति कर सकता है। अपरिग्रह ब्राह्मणका जीवन-व्रत है। इतनेपर भी इस उम्रमें आपने इस प्रकार बर्तन लिये, इससे

आपकी स्थितिको मैंने समझ लिया और अब आपको सीधा देना ही मेरा धर्म है। आप मेरे लिये खेद न कीजिये। अपने धर्मको सँभालिये।' यों कहकर शास्त्रीजीने उन्हीं थाली-कटोरीमें सीधा भर दिया। इतना ही नहीं, घीसे भरा हुआ एक लोटा रखकर कहा—'थाली, कटोरी और लोटा—ये तीनों बर्तन साथ ही होने चाहिये। अतएव अब आप इन तीनों बर्तनोंके साथ सीधा स्वीकार कीजिये।'

वृद्ध ब्राह्मण ढीले पड़ गये और शास्त्रीजीने इस प्रकार सीधा स्वीकार कराया, तभीसे वे वृद्ध इन तरुण शास्त्रीके शिष्य बन गये। उनका जीवन ही बदल गया। इसके बाद वे दिनभरमें एक बार भोजन करते। सातसे अधिक घरोंमें आटा माँगने नहीं जाते और किसीके भी दरवाजेपर ग्यारह बार गायत्री-जपमें जितना समय लगता, उससे अधिक नहीं ठहरते। कोई अपंग या अन्धा मिल जाता तो उसे पहुँचा आते। किसीपर ज्यादा बोझा देखते तो उसका कुछ बोझ स्वयं उठा करके उसके घर पहुँचा आते। शास्त्रीजी अपने यहाँ नित्य वेदान्तकी कथा सुनाते तो वे नियमितरूपसे एकाग्रताके साथ उसे सुनते, बीमार होते तो भी आते। उनकी अन्तिम बीमारीके समय जब वे तीन-चार दिन नहीं आ सके थे, तब शास्त्रीजी रोज उनके यहाँ जाकर उस दिनका कथा-प्रसंग सुना आते।

(अखण्ड आनन्द)

—मुकुन्दराय, वि० पाराशर्य

विश्वासके साथ मन्त्रजापका फल

कबीर सब जग निरधना धनवंता नहिं कोय।
धनवंता सो जानिये जाके राम नाम धन होय॥

मैं किसी बड़े संकटमें फँस गया। मनमें बहुत क्लेश रहने लगा। जब कोई उपाय नहीं दिखायी दिया तब अपने इष्टदेवके नामका जाप करते हुए मैंने—

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥

इस मन्त्र और चौपाईका जाप शुरू कर दिया। कुछ ही दिनोंमें मेरा संकट दूर हो गया और मनको बहुत ही शान्ति मिली। यह मन्त्र श्रीमद्भागवतका है। जब जरासंधने दस हजार राजाओंको कैदमें डाल दिया, तब उन राजाओंको दुःखी देखकर श्रीनारदजीको बड़ी दया आयी। श्रीनारदजीने जेलमें जाकर उन राजाओंको यह मन्त्र बताया। उन्होंने श्रद्धा और प्रेमसे इसका जाप किया। फलतः भगवान् श्रीकृष्णने जाकर जरासंधको मरवाया और उन राजाओंके क्लेशको दूर किया। मैंने सोचा—मैं भी इस मन्त्रका जाप करूँ, भगवान् मेरे क्लेशको भी दूर करेंगे। साथ-ही-साथ यह सुन्दरकाण्डकी चौपाई भी याद आ गयी। जब रावणने श्रीसीताजीको अशोकवाटिकामें कैद करके दुःख दिया, यहाँतक कह दिया।—

मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना॥

तब श्रीसीताजीने हनुमान्‌जीसे इतना ही कहा था—

दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥

भगवान्ने रावणको मारकर श्रीसीताजीका संकट दूर कर दिया। मुझे इस मन्त्र और चौपाईमें पूरा विश्वास हो गया। विश्वासके सहित जपनेसे मेरा संकट दूर हो ही गया, पर मनको जो शान्ति मिली, बस, मैं ही जानता हूँ।

एक दिन मैं सोचने लगा, चौरासी लाख योनियोंमें भटकनेसे ज्यादा और क्या संकट होगा। गर्भवास और मृत्युके समय महान् कष्ट होता है।

को दीर्घरोगो भव एव साधो किमौषधं तस्य विचार एव।

स्वामी श्रीशंकराचार्यजीने बड़ा रोग बार-बार जन्म लेना ही बताया है। साथ-ही-साथ उसकी दवा भी बता दी। (परमात्माके स्वरूपका मनन।) मेरा मन तो यह कहता है कि यह मन्त्र और वह चौपाई मुझे चौरासीके चक्करसे भी बचा देगी। मैं तो अब नियमसे अपने प्रभुके नामका जाप करते हुए इस मन्त्र और चौपाईका भी जाप करता हूँ।

मुझे 'कल्याण' से बहुत ही सहायता मिली है। इसलिये 'कल्याण' के पाठकोंसे मैं यह निवेदन करता हूँ कि अपने इष्टदेवके नामका जाप तथा ध्यान करते हुए जितना उचित समझें—

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥

इस मन्त्र और चौपाईका भी विश्वासपूर्वक जाप प्रतिदिन कर लिया करें। कुछ ही दिनोंके बाद देखिये इसका चमत्कार।

× × ×

—आसाराम व्यास

संगका फल

इसे घटना तो कहना उचित नहीं होगा; परंतु संयोगकी बात अवश्य कह सकते हैं, बात कुछ पुरानी है।

मेरे एक मित्र थे। बहुत समयतक हम साथ-साथ पढ़े। उनका परिवार हमसे सम्पन्न था। इसी कारणसे उन्हें हाथ-खर्चके लिये रोजाना अच्छे पैसे मिल जाते थे; क्योंकि वे माता-पिताके प्रिय लड़के थे। समयके साथ-साथ भाग्यने भी करवट बदली। उनके पिता सट्टेके शौकमें पड़ गये और उन्होंने अपने संचित धनको इस बुरे शौकमें स्वाहा कर दिया। स्थिति यहाँतक आ पहुँची कि घरका खर्च चलना भी कठिन हो गया। घरकी हालत कैसी भी हो, पर खर्चके पैसे मिलने ही चाहिये। फिर उन्हें फिजूलखर्च करनेकी आदत तो पड़ गयी थी। उन्होंने चोरी करना शुरू किया। कभी सम्बन्धियोंके घर तो कभी अपने मित्रोंके यहाँ; आदतमें स्थायित्व आ गया और कुछ मित्रोंकी कुशिक्षा भी ऐसी मिली। वे पढ़ाई छोड़कर इसी कुकार्यमें लग गये।

दो सप्ताह पहले वे ही मित्र एक लम्बे अर्सेके बाद मुझसे मिले तो ऐसा अनुभव हुआ कि मानो वे दूसरा जन्म लेकर इस पृथ्वीपर अवतरित हुए हैं। मैंने प्रश्न किया—'मित्र! इस परिवर्तनका रहस्य क्या है?' उन्होंने बताया कि एक चोरीके मामलेमें कुछ लोगोंने मुझे घेर लिया था और मेरी बहुत पिटाई भी की गयी। उसी समय एक साधुजी उधरसे गुजरे। उन्होंने मेरी

दशापर सहानुभूति प्रकट करते हुए मुझे छुड़ाया और भीड़को तितर-बितर कर दिया। मुझे वे अपने निवास-स्थान (मन्दिर)-पर ले गये और समझाते हुए साधुजीने बताया कि 'बेटा! चोरी करनेमें दो बड़े नुकसान हैं। प्रथम तो जिसका पैसा हम चुराते हैं, उसके आत्माको बड़ा दुःख पहुँचता है और दूसरे, उस चुराये हुए पैसेका सदुपयोग भी नहीं हो पाता। तुम इस बुरे व्यसनको छोड़ दो और रोजाना सबेरे उठते ही पाँच मिनिट अपने इष्टदेवताका नाम लिया करो। भगवान्‌की कृपासे सब कार्य ठीक हो जायगा।'

उस दिनके बादसे साधुजीके द्वारा बताये हुए मार्गपर मैं चलने लगा। उस परम परमात्माके नामका प्रभाव यह हुआ कि मैंने जवाहिरातका धंधा सीख लिया, घरकी स्थिति भी सुधर गयी और आज मेरा परिवार पूर्णतया सुखी है।

मित्रकी बात मेरे हृदयके अन्तस्तलतक पहुँची और मैं बोल उठा—'हे परमात्मा! सत्संग तथा तेरे नामके प्रभावसे हैवान भी इंसान बन सकते हैं।'

—हेमचन्द्र सोजातिया

विदेशी व्यापारी—सच्ची व्यापारी नीति

सन् १९३५-३६ की बात है। देशभरमें व्यापारमें मन्दी आ रही थी। उसी समय हमारे एक व्यापारी मित्रने कोयलेकी खानके मालिक एक यूरोपियनसे चार रुपये टनके भावसे ४,००० टन कोयला नं० १ का सौदा किया था। कुछ ही दिनों बाद इथोपीयनकी लड़ाई शुरू हो गयी और बैगनोंकी कमीके कारण उसी कोयलेका भाव बढ़कर सोलह रुपये टन हो गया। कोयलेके व्यापारी समझने लगे कि अब इन मित्रको इनके सौदेका माल नहीं मिलेगा। इतना ही नहीं, कई ईर्ष्यालु व्यापारियोंने तो साहबसे स्वयं मिलकर कहा कि 'आपको उनसे डिपाजिटके रुपये अभी नहीं मिले हैं। अतएव उनका सौदा कैन्सल (रद) करके बाजार-भाव माल हमें दे दें।' पर साहबने यह कहकर कि—'ऐसा करनेसे हमारी व्यापारी नीतिपर लांछन आता है'—उन्हीं व्यापारी मित्रको डिपाजिटके रुपये तुरंत भरकर माल डेलिवर लेनेके लिये लिखा और अपनी आफिसमें यह आदेश दे दिया कि 'जबतक उनका ४,००० टन माल पूरा न दे दिया जाय तबतक अन्य किसी भी पार्टीको माल नहीं बेचा जाय।'

डिपाजिटके रुपये भरे गये और मालकी डेलिवरी शुरू हो गयी। गाड़ीमें नं० १ का अच्छा माल ही भर्ती किया जाता है या नहीं, यह देखनेके लिये हमारे मित्र रोज कोलियरीपर 'लोडिंग' देखने जाते। कम्पनीके लोडिंग-क्लर्कने एक दिन

कहा—'आप बड़े भाग्यवान् हैं, खूब कमायेंगे।' यों कहकर—'कुछ देनेकी इच्छा दिखलायी।' मित्रने 'कम्पनीको किसी प्रकार भी धोखा न दिया जाय' इस निश्चयके कारण उसे कुछ भी दिया नहीं। इसपर उसने नाराज होकर नं० १ के बदले नं० २ का माल भराना शुरू कर दिया। परंतु इसमें भी काफी नफा था, अतः उन मित्रने कोई आपत्ति नहीं की और रोज नं० २ का माल भरा जाने लगा।

संयोगवश एक दिन कम्पनीके साहब खुद कामका निरीक्षण करते हुए रेलवे साईडिंगपर आ पहुँचे। उन्होंने लोडिंग-क्लर्कसे पूछकर पता लगा लिया कि यह माल उन्हीं मित्रका भरा जा रहा है। वहाँ कुछ भी न कहकर उन्होंने आफिस जाकर तुरंत चपरासीके द्वारा उस क्लर्कको तथा व्यापारी मित्रको बुलाया। घटिया माल भरानेके सम्बन्धमें क्लर्कको कड़ा उलाहना देकर उन्होंने कहा—'कम्पनीने इनको नं० १ का माल बेचा है, यह तुम जानते हो फिर नं० २ का माल कैसे भरवा रहे हो?' क्लर्कने कहा—'मैं तो इनके सामने ही माल भरवा रहा था। इन्होंने कोई भी आपत्ति नहीं की।'

साहब और भी गुस्सा होकर बोले—'ये आपत्ति करें या न करें। अपनेको तो अपनी व्यापारी नीतिके अनुसार निश्चित किया हुआ माल ही भराना चाहिये। तुम अपने कर्तव्यसे क्यों गिरे?' फिर उन्होंने उन व्यापारी मित्रसे 'आपने घटिया माल क्यों भरने दिया?' यह पूछा। मित्रने कहा—'यह क्लर्क कहीं अधिक हैरान करता—डेलिवरीमें देर कर देता। फिर इस मालमें भी नुकसान तो था ही नहीं, इसीसे मैंने कुछ नहीं कहा।'

साहबने गम्भीरताके साथ उपदेश दिया—'यही तो तुम्हारे भारतीयोंकी कमजोरी है। लालचके वश होकर, मिलता मुनाफा चला न जाय, इसलिये तुमलोग अपने हकके लिये भी लड़ते डरते हो। तुम्हें मेरे पास शिकायत करनी चाहिये थी।'

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि दूसरे ही दिन क्लर्कको नोटिसका वेतन देकर नौकरीसे निकाल दिया गया और व्यापारी मित्रके उस दिनतक गये हुए नं० २ मालका बिल तीन रुपया टनके हिसाबसे बनाया गया। शेष माल पूरा बढ़िया दिया गया। विदेशी व्यापारियोंकी यह व्यापारकी सच्चाई अनुकरणीय है।

(अखण्ड आनन्द)

—शान्तिलाल बोले

तीन लाखकी तीन बातें

पुरानी बात है—यमुना-तटीय राज्योंमेंसे एक राज्यमें मधुसूदन नामका एक राजा राज्य करता था। मधुसूदन प्रजावत्सल, धार्मिक एवं दानवीर राजा था। उसके राज्यमें हर प्रकारसे सुख-सम्पदा विद्यमान थी।

एक दिन प्रातः ही नगरके बाजारोंमें, मुहल्लोंमें एक महात्मा घूमने लगा। जिसने देखा—उसे भोजनके लिये, वस्त्रके लिये पूछा, परंतु महात्मा कुछ भी स्वीकार न करता और एक ऊँचे स्वरसे अलाप करता जा रहा था—'एक-एक लाखकी तीन बातें, तीन लाखकी तीन बातें।'

धीरे-धीरे इस महात्माका समाचार महाराज मधुसूदनतक जा पहुँचा। मधुसूदन अपने अधिकारीवर्गसहित स्वयं महात्माकी सेवामें उपस्थित हुआ।

'क्या चाहिये महात्मन्!'

'तुम दे सकोगे?'

'आज्ञा कीजिये। यथाशक्ति प्रयत्न करूँगा।'

'हम कुछ महात्मा उत्तरी आर्यावर्तका भ्रमण करते हुए तुम्हारी नगरीसे कुछ दूर विश्रामके लिये ठहरे हैं। उनके लिये भोजनका प्रबन्ध करना है।'

'मेरा अहोभाग्य।'

'परंतु भिक्षा नहीं चाहिये राजन्! परिवर्तन चाहिये। मैं आपको तीन उपयोगी बातें बताऊँगा, आप तीन समयके

भोजनका प्रबन्ध करें।'

× × ×

महाराज मधुसूदनकी आज्ञाकी देर थी। सब भोजन-सामग्री उपस्थित हो गयी। धार्मिक राजाकी धार्मिक प्रजा महात्माओंके दर्शनार्थ उमड़ चली। सब महात्माओंके दर्शन कर अपनेको भाग्यशाली समझने लगे। विदाका समय हुआ। उस प्रमुख महात्माने राजाको उपदेश दिया—'सुनो राजन्! हम बहुत प्रसन्न हैं। हमारी बातोंको सदा स्मरण रखना—

१. प्रातः ब्राह्ममुहूर्तमें उठा करो।

२. आयेका आदर करो।

३. क्रोधके समय शान्ति रखो।'

सभी महात्मालोग विदा हुए। राजा भी अपने मन्त्री आदिके साथ वापस लौट गया।

उसी दिनसे राजा मधुसूदनने तीनों बातोंपर आचरण आरम्भ कर दिया। इन बातोंपर आचरण करते कई दिन बीत गये। एक दिन प्रातः महाराज उठकर यमुना-तटपर भ्रमण कर रहे थे। आकाशमें अभी तारे चमक रहे थे। अन्धकार अभी दूर नहीं हुआ था कि राजाको एक जोरका शब्द सुनायी पड़ा। राजाने ऊपरकी ओर देखा। एक विशालकाय स्त्री दिखायी दी। उसकी आँखोंमें आँसू भरे थे। राजाने उसकी ओर देखकर पूछा, 'कौन हो तुम और क्यों रो रही हो?'

'मैं होनी हूँ।'

'परंतु रो क्यों रही हो?'

'इसलिये कि कल इस राज्यका राजा मारा जायगा। उस

सामनेवाले पर्वतसे एक साँप निकलेगा और वह राजाको कल सायं सूर्य डूबनेसे पूर्व ही डँस लेगा। इससे प्रजा बहुत व्याकुल हो दु:खी होगी। ऐसा राजा फिर नहीं मिल सकता। इसलिये मैं दु:खी हो रो रही हूँ।'

इतनेमें आकाशमें प्रकाश हो गया। सूर्य पूर्वसे अपनी किरणें फेंकने लगा था। राजाने देखा तो आकाशकी ओर कुछ भी शेष न था।

दिनको दरबार लगा। महाराजने अपनी सारी देखी-सुनी बातें मन्त्री एवं अन्य सबको कह सुनायीं। किसीने केवल भ्रम कहा तो किसीने स्वप्न। परंतु राजाके मनमें यह बैठ गया कि यह बात सत्य है। प्रात: उठनेका लाभ वह प्रत्यक्ष देख चुका था कि उसे अपनी मृत्युका दो दिन पूर्व पता चल गया।

दरबारके कुछ विज्ञ व्यक्तियोंने इस बातको ठीक समझा और वे चिन्तित हो गये। महाराज मधुसूदनके कोई लड़का न था, केवल एक युवती लड़की थी। मन्त्रिमण्डलमें निर्णय हुआ कि महाराजके पश्चात् उनकी इस लड़कीको पुरुष-वेशमें सिंहासनपर विराजमान किया जाय। जब उसका विवाह हो जाय तब यदि वर योग्य हो तो उसे राज्य सौंप दिया जाय अथवा फिर जिसे भी प्रजा उचित समझे, सौंपे।

महाराजने यह आदेश महलोंमें जाकर रानीको सुना दिया। रानी व्याकुल हो गयी। राजाने कहा, 'देखो, मेरे पीछे उसी वक्त लड़कीको पुरुष-वेशमें तैयार कर देना।'

दूसरे दिन प्रात: महाराज उठे, अपने नित्यकर्मसे निवृत्त हो वे बाहर निकल गये। अचानक उनके मनमें विचार आया कि

आयेका आदर कर देखना चाहिये। आज्ञा कर दी गयी। तैयारी होने लगी। जिस ओरसे साँप निकलकर आनेवाला था— सारा मार्ग सजा दिया गया। घास लगा दी गयी। अगरबत्ती एवं सुगन्धियुक्त पदार्थ मार्गमें जला दिये गये। स्थान-स्थानपर मीठे दूधके कटोरे रख दिये गये। पर्वतसे लेकर महलके उद्यानतक यही सजावट थी। उद्यानमें स्वयं राजा एक कुर्सी लगाकर बैठ गये।

होनी होकर रहती है। ठीक समयपर साँप उसी पर्वतसे निकला। मार्गकी सुगन्धित और सजावटसे प्रसन्न होता हुआ वह कभी लेटता, कभी उलटता, कभी दूध पीता, रेंगने लगा। परिणामस्वरूप सूर्य डूबनेके समयतक वह वहाँ न पहुँचा। बहुत देरके बाद वहाँ पहुँचा तो राजाने कहा, 'नागदेवता! अपना कार्य करो।' यह कहकर महाराजने पाँव आगे बढ़ा दिया।

साँप मनुष्यकी वाणीमें बोल उठा—'राजन्! मैं तेरे स्वागतसे प्रसन्न हूँ। मुझसे कुछ भी माँग लो।'

'मेरे पास सब कुछ है। मुझे कुछ नहीं चाहिये। आप अपना कार्य करो नागदेवता' राजाने मुखपर मुस्कान लाते हुए कहा।

'अच्छा राजन्! यदि तुम कुछ नहीं माँगते तो लो मैं ही तुम्हारी मौत मरता हूँ।' साथ ही साँप पृथ्वीपर उलट गया और निर्जीव हो गया।

'आयेका आदर करने' का प्रत्यक्ष फल था।

राजा प्रसन्नतासे उठा और महलोंकी ओर बढ़ा। रानी रो-रोकर व्याकुल हो रही थी। इसपर भी ढाढस बाँधकर वह पतिकी आज्ञाका पालन करती हुई बेटीको पुरुष-वेशमें तैयार

कर, फिर उसे गले लगाकर अपने हृदयको शान्त करनेका प्रयास कर रही थी।

राजा महलमें प्रविष्ट हुआ और रानीके कमरेमें गया तो वहाँका दृश्य देखकर द्वारपर अवाक् खड़ा रह गया। हैं, यह क्या, रानी मेरे मरनेका विचार कर किससे आलिंगन किये हुए है? मुझे अब पता चला यह तो नीच है। अभी तो मैं जीवित हूँ तो इसका यह हाल है, मेरी मृत्युके बाद तो पता नहीं यह क्या-क्या करती? ऐसा विचार आते ही राजाने तलवार निकाल ली और वह तेजीसे रानीकी ओर बढ़ा। रानी आँखें मूँदे बेसुध-सी हो रही थी।

एकाएक राजाको ध्यान आया। 'क्रोधके समय शान्ति रखनी चाहिये।' तलवार छोड़कर राजा आगे बढ़ा। उसने जाकर देखा—उसकी पुत्री ही पुरुष-वेशमें अपनी माँके साथ लेटी थी!

राजाने हृदयमें भगवान्‌को धन्यवाद दिया और महात्माके चरणोंका ध्यान कर मन-ही-मन नमस्कार करने लगा।

—प्रेमप्रकाश बोहरा

मुखियाकी सुहृदता

सोनपरी गाँवमें मगनकी लड़कीके पेटमें प्रसवका दर्द उठा। अबतक अनेक सफल प्रसूतिमें यश पायी हुई कंकुमा भी हैरान थी। उन्होंने मगनको घरमें रोक लिया। पर मगन बेचारा प्रसवमें क्या करता। कंकुमा और गाँवकी दूसरी सयानी स्त्रियोंने मगनसे कहा कि 'शहरसे डॉक्टरको बुलाया जाय और उम्र हो तो रतन भले ही बच जाय। और कोई उपाय तो नहीं है।' मगनको जीवनमें कभी डॉक्टरसे काम नहीं पड़ा था। चौमासेके दिन थे। शहर सोलह मील दूर कादा-कीचड़में बैलगाड़ी चलनी कठिन। क्या किया जाय। मगन पाठशालाके मास्टर या तलाटी साहबको शहर भेजनेकी नीयतसे घरसे निकला। भाग्यकी बात, तलाटी साहब थे नहीं और मास्टरने कहा कि 'छुट्टीके बिना मैं पाठशाला छोड़कर जा नहीं सकता।'

आखिर हिम्मत करके मगनने खेतमें बोवनी करते हुए भीमाभाईके पास जाकर सारी बातें सुनायीं। मानवताको समझनेवाले गाँवके इस मुखियाने तुरंत ही अपना काम छोड़कर अबतक खबर न देनेके लिये उसे उलाहना दिया और घास चरती घोड़ीपर दरी डालकर खेतसे सीधे ही शहरकी ओर घोड़ीको दौड़ा दिया।

भीमाभाईने सीधे विकास-विभागमें जाकर ब्लाक-अफसरको सब बातें समझायीं। उनकी बात सुनते ही मानवतावादी अफसर स्वयं चलनेको तैयार हो गये और लेडी डॉक्टरको साथ लेकर

वे सोनपरीकी ओर चल पड़े। कुछ ही देरमें सोनपरीमें मोटरका हार्न बजा तो सबकी जानमें जान आ गयी। मोटरसे डॉक्टर और लेडी डॉक्टरको उतरते देखकर मगनके मनमें आशा बँध गयी। डॉक्टर और लेडी डॉक्टरने तुरंत ही बड़ी लगनसे उपचार आरम्भ कर दिया और दोनोंके परिश्रम तथा पुरुषार्थके फलस्वरूप रात्रिके साढ़े सात बजे रतनने पुत्र प्रसव किया। इसी समय भीमाभाई घोड़ी दौड़ाते पहुँचे। वे घोड़ीसे उतर ही रहे थे कि जातवान घोड़ी शक्तिसे अधिक परिश्रम करनेके कारण तुरंत गिर पड़ी और उसकी आँखें ऊपरको चढ़ गयीं। यह सुनते ही भले अधिकारी डॉक्टर तथा मगन आदि सब दौड़े आये। उस मनुष्यके डॉक्टरने समयानुसार घोड़ीपर अपनी डॉक्टरी विद्याका प्रयोग किया। घोड़ीके सिरपर ठंडा जल छिड़का गया और इन तात्कालिक उपायोंके फलस्वरूप एक हजार मूल्यकी घोड़ीके प्राण बच गये।

इसपर जब सब लोगोंने भीमाभाईको इस प्रकार घोड़ीको दौड़ानेके लिये उलाहना दिया, तब उन भले मुखियाने कहा कि 'मनुष्यसे बढ़कर क्या है? मगनकी लड़की मेरी ही तो लड़की है। उसके प्राण बचानेमें यदि मुझे घोड़ीसे हाथ भी धोने पड़ते तो भी मुझे कोई अफसोस नहीं होता।'

इस प्रकार इस भले मुखियाकी बात मगन तथा गाँवके लोग सुनते रहे और मन-ही-मन सब उसकी वन्दना करते रहे।

—मनुभाई राजपूत

कर्तव्यपालन

गत १९६१ वैशाखकी सत्य घटना है। बैल बेचनेवाले व्यापारी, जिन्हें लोग भोजपुरीमें पैकिरहा कहते हैं, नुआँव मेलासे गर्रा लाइन नहरसे आकर विक्रमगंज-भभुआ रोडके द्वारा भलुनी मेलाको जा रहे थे। रास्तेमें चितैनी गाँवके समीप एक कुएँपर ठहरकर उन्होंने स्नान-भोजनादि किये। मवेशियोंको पानी पिलाया और अपने बैलोंको लेकर चल दिये। वहाँसे तीन मीलपर जब वे कोचसबाजार पहुँचे तब रुपयोंकी जरूरत पड़नेपर मालिक व्यापारीने अपनी टेट टटोली। नोटोंका पुलिंदा गायब था। काटो तो खून नहीं।

वह नोटोंका कागजका पुलिंदा चितैनी ग्रामनिवासी श्रीरमनसिंह यादव (किसान)-को मिल गया था। पर किसका है यह उन्हें पता नहीं था।

बेचारा व्यापारी एक साथीको लेकर भगवान्‌का स्मरण करता हुआ उसी कुएँपर लौटकर आया और उसने अच्छी तरह ढूँढ़ा; पर कहीं कुछ भी पता न लगनेपर निराश हो गया।

संयोगवश यह बात श्रीरमनसिंहके कानोंमें जा पहुँची और वे उस कुएँपर पहुँच गये। उन्होंने व्यापारीको सान्त्वना देते हुए कहा—'जो हुआ सो हो गया। राम-राम कहिये। बहुत परेशान हो गये हैं। गरमीके दिन हैं। प्यास लगी होगी, गाँवमें चलकर पानी पी लीजिये।' व्यापारी बेचारेने कहा—'मुझे तो एक ही प्यास है।' श्रीरमनसिंहने उनको किसी तरह गाँवमें लाकर शरबत

पिलाया और फिर नोटोंका पुलिंदा लाकर उनके हाथपर रख दिया। गिननेपर पूरे एक हजारके नोट निकले। व्यापारी बाग-बाग हो गया। उसने २५० रुपये श्रीयादवको देने चाहे; परंतु उन्होंने एक पैसा भी नहीं लिया। व्यापारी और यादव दोनों ही परम प्रसन्न थे। व्यापारी खोये रुपये पाकर और यादव अपने कर्तव्यका पालन कर!

—राघवराम तिवारी

भूखों मरतेका पाप अपराध नहीं

१९७५ का भयानक दुर्भिक्ष था। भूरा लुहारके घरमें सात आदमी थे—दो लड़के, तीन लड़कियाँ और दो स्त्री-पुरुष स्वयं। वह बारह-बारह महीनोंके वादोंपर किसानोंका काम करता, परंतु इस साल किसानोंके खेतोंमें, खलिहानमें कुछ था ही नहीं, तब उसे क्या मिलता। घरकी हथौड़ी-बसौली सब बेच दी, तो भी गरीबीके वे लंबे दिन कट नहीं पाये। दो-दो, तीन-तीन दिनोंके लंघनके बाद बच्चोंके करुण क्रन्दनसे घबराकर भूरा लुहारने चाबियोंका गुच्छा लिया और हथौड़ा-छीनी लेकर वह घरसे निकला। यों रोज जाने लगा और कभी कुछ अनाज, कभी रुपया-दो रुपये, कभी छोटा-मोटा कोई चाँदीका गहना लेकर घर आने लगा। कोई पूछता तो कहता '·······बुढ़ियाकी चक्की टाँकने गया था।'

एक दिन जुवानसिंह ठाकुरके कोठारसे अनाज निकला, तब भूरा लुहारपर बहम हुआ। माली बुढ़ियाने—'भूरा लुहारके घर रोज एकादशी होती अब पारणा कहाँसे होने लगा'—विचार कर संदेह किया। उसने यह बात बतायी। फौजदारने भूराको पकड़ लिया, बाँधा, मारा और उसके घरकी तलाशी ली। चाबियोंका गुच्छा प्राप्त किया। उससे स्वीकार करानेके लिये फौजदारने उसे मार-मारकर अधमरा कर दिया। पर भूराका एक ही उत्तर था—'मैं कचहरीमें ही बयान दूँगा।'

लुहारकी सचाई-ईमानदारीपर गाँवका विश्वास था। भूखके मारे भले ही कुछ कर लिया हो।

भूराके हाथोंमें हथकड़ी डालकर फौजदारने दो सिपाहियोंके साथ उसे कचहरीमें भेज दिया। मुकद्दमा चला। हाकिमने केश पढ़ा। सेंध लगाना, अनधिकार प्रवेश करना, चोरी करना आदि बहुत-से अभियोग थे। कारीगरवर्गके आदमीको पूरा दण्ड नहीं मिलेगा तो बड़ी और भयानक चोरियाँ होने लगेंगी। ऐसा पुलिसने लिखा था।

भूराका बयान शुरू हुआ—

'मैंने किसी व्यसन या बदनीयतीसे चोरी नहीं की। अपराधीके रूपमें मैं पहली ही बार कचहरीमें आया हूँ। मैंने चाबियाँ लगाकर अनाज-गहने आदिकी जो चोरी की है, वह मालदार बननेके लिये नहीं। मेरे घरमें तीन दिनोंसे अनाजका दाना नहीं था। कहीं उधार मिला नहीं; पेटका खड्ढा भरनेके लिये बच्चे प्याजके छिलके ढूँढ़ते थे। माँके सामने रोटीके लिये बुरी तरह रोते थे। मैं अनाजके लिये गाँवके व्यापारी, किसान-जमींदार, सभीके पास भिखारीकी तरह हो आया, पर किसीने भी गाँवके कारीगरको उधारके रूपमें भी एक वक्तका अनाज नहीं दिया। तब मुझे यह रास्ता अपनाना पड़ा। पुलिस मुझे पूरा मार डालती तो अच्छा होता। अधमरा किया, इससे तो भूखकी ज्वाला बढ़ेगी ही। अब सरकार जो कुछ सजा करें, सो कबूल।'

यों कहते-कहते ही चक्कर आ जानेके कारण वह कठघरेमें ही गिर पड़ा।

भूराके मुँहपर जल मँगवाकर छिड़का गया। चपरासीने हवा

की। मूर्च्छा टूटी। अपराधी उठ बैठा।

लगभग आधे घंटेमें हाकिमने दो पृष्ठोंका फैसला सुनाया। उन्होंने कहा—'बच्चोंको भूखके दुःखसे हताश होनेके कारण माता-पिताका दिमागपर काबू न रहे और वे पेटके लिये अपराध करें तो क्षमाके पात्र हैं; परंतु दानके छोटे-बड़े चन्दोंमें ऐसे गरीब परिवारोंपर दया करके इनकी सार-सँभालके लिये समाज सहायतामें हाथ लम्बा नहीं करता—यह देशका दुर्भाग्य है। मेरे व्यक्तिगत वेतनमेंसे पचास रुपये इस अपराधीको इसके बच्चोंकी परवरिशके लिये दिये जाते हैं।'

कोर्टमें उपस्थित सभी लोग आश्चर्यमें डूब गये।

(अखण्ड आनन्द)

—नारायण गो०कलसारकर

रामरक्षास्तोत्र

'पढ़ो, समझो और करो' में 'रामरक्षास्तोत्र' के विषयमें बहुत कुछ प्रकाशित हो चुका। इसी विषयमें आजसे कुछ वर्ष पहलेकी एक सत्य घटना नीचे प्रस्तुत है—

मेरे छोटे बच्चेको (जबकि उसकी आयु केवल एक ही वर्षकी थी) एक दिन ठीक बारह बजे रात्रिमें अचानक बड़े जोरसे चीत्कार करते सुनकर हम सब घरवाले जाग पड़े; और देखा तो बच्चा इस ढंगसे काँपता और इधर-उधर देखता हुआ रो रहा था, मानो उसे बहुत भय लग रहा हो। उसी दशामें पूरी रात बीत गयी और सुबह नौ बजते-बजते बच्चेको तेज बुखार और फिट (खिंचाव), जैसे पुराने मिरगीके रोगीको आया करती है, आने लगी। उस दिन दिनभर काफी उपचार (डॉक्टर, वैद्य, झाड़ा-टोना आदि-आदि) होते रहे; परंतु कोई भी लाभ नहीं हुआ, बल्कि बच्चेकी दशा इतनी बिगड़ गयी कि उसका रोम-रोम काँपने लगा था और पहले जहाँ उसे एक-एक घंटेसे फिट आती थी, अब बीस-बीस मिनटमें आनी शुरू हो गयी। उसी दिन दो बजे रात्रिकी गाड़ीसे चाचाजीके यहाँ पुत्रीकी शादीके लिये बारात आनेवाली थी। घरवालोंकी चिन्ताका कोई पार नहीं था; और मेरे तो आँसू रोकनेपर भी नहीं रुक पा रहे थे। बल्कि शादीकी साज-सजावट और सम्पूर्ण तैयारियाँ देख-देखकर और भी अधिक जी जल रहा था। रातको बारात आ गयी। होनेवाला काम तो समयपर होता ही है—सुखमें हो या दुःखमें। दूसरे दिन

सबेरे सभी बाराती आते हैं और बच्चेकी दशा देखकर चुपचाप बिना कुछ कहे चले जाते हैं (अर्थात् बच्चेके जीवनकी अब कोई आशा शेष नहीं रह गयी थी और विवाहके शुभ अवसरपर यह अशुभ......)।

तीसरे दिन भी जब बच्चेका दुःख किसी प्रकार भी नहीं छूट सका, तब दुःखी हृदयसे मैंने एकान्तमें प्रभुसे कहा—'हे नाथ! अब तो इस छोटे-से जीवका दुःख देखा नहीं जाता। मैं नहीं चाहता कि यह रोगमुक्त होकर जीवित रहे; जैसे भी हो दीनबन्धु अब इसका दुःख दूर कर दो। इसे इस घोर दुःखसे छुटकारा दे दो।'

दोपहरके दो बजे माताजीकी इच्छा हुई कि स्थानीय रामद्वारामें वयोवृद्ध संतजीके पास जाकर बच्चेके कुशलकी कामना की जाय और उनसे (जैसा कि वे पहले कई बार भी करते सुने गये हैं) रामरक्षास्तोत्रसे अभिमन्त्रित जल लाकर बच्चेको दिया जाय और शेष सभी उपचार बंद कर दिये जायँ। मुझे यह बात बिलकुल पसंद नहीं आयी। परंतु माताजीके अधिक कहनेपर जाना ही पड़ा। वैसे तो संतजी मेरे परिचित थे, परंतु अधिक सम्पर्क तबतक नहीं था। मैं प्रणाम करके चुपचाप बैठ गया। पासमें एक-दो सज्जन और भी बैठे थे। एकाएक वास्तविक मनोकामना कहनेकी इच्छा नहीं हुई। कुछ सत्संगविषयक बातें होनेके पश्चात् संतने स्वतः ही पूछा—'क्यों? आज उदास कैसे हो?' उत्तरमें मैंने सभी बातें सत्य-सत्य निवेदन कर दीं। संत बड़े त्यागमूर्ति थे; कृपा करके कहने लगे—'तीन दिन हुए आकर कुछ कहा भी नहीं।' और उठकर एक

छोटा-सा पात्र जलसे भरकर लाये तथा मेरे सामने ही बैठकर उस पात्रके जलमें अँगुली डालकर घुमाते रहे और मुँहसे धीरे-धीरे मीठे और प्रेमभरे स्वरसे रामरक्षास्तोत्रका पाठ करते रहे। करीब आठ-दस मिनटके बाद मुझे वह जल देकर बोले—जब भी बच्चेको जल पिलानेकी आवश्यकता हो, साधारण जलके स्थानपर यह जल पिलाते रहना और कल आकर फिर मिलना 'रामकृपासे सब ठीक होगा।'

मैं चुपचाप वह पात्र लेकर घर आ गया और आज्ञानुसार वह जल बच्चेको पिलाने लगा। महानुभाव! कहना न होगा, चौथे दिन सबेरेतक हालत सुधरते-सुधरते बच्चा माँके स्तनपानकी चाहना करने लगा। सभी घरवाले बड़े आनन्दित थे। मैं सबेरे ही संतजीके पास गया और सब हाल सुनाया तो वे कहने लगे—'भाई! राम-कृपासे क्या-क्या नहीं हो जाता।'

यह बिलकुल सत्य घटना है जो कि मेरे हृदयमें 'रामरक्षास्तोत्र' का महत्त्व लिये बैठी हुई है और जीवनभर रहेगी। आज बच्चा साढ़े तीन वर्षका है और रामकृपासे अभीतक तो उसे वैसी कोई भी शिकायत फिर नहीं हुई है। शेष रामकृपा।

—मोहनलाल कंट्राक्टर

मानवताके दो छोर

मोती पटेल संस्कारी तथा भक्तिभावमें रँगा रहता। उसने लोगोंको प्रेमसे समझाकर गाँवमें शराब, मांस और चोरीको बंद करवा दिया था। मोती पटेलका लड़का रायसंग जवान हो गया था। मोती पटेलकी केवल यही एक कामना थी कि पुत्रका विवाह खूब धूमधामसे किया जाय।

परंतु मनुष्यका सोचा हुआ क्या होता है। लड़कीके पिताने अपनी सुविधाके अनुसार जेठके पिछले पखवाड़ेका पक्का मुहूर्त निकलवाकर पुरोहितजीको भेज दिया। पुरोहित महाराजको आया देखकर मोतीने उनका आदर-सत्कार किया, भोजनकी व्यवस्था करायी। मोती पटेलको बगलके गाँवके धरमशी सेठपर पूरा विश्वास था और पीढ़ियोंसे दोनों कुटुम्बोंका परस्पर व्यवहार भी चला आता था। इससे मोती पटेलने विवाहका मुहूर्त स्वीकार कर लिया। अवसर देखकर पुरोहित महाराजने मोती पटेलसे कहा—

'पटेल! तुम्हारे सम्बन्धीजीकी यह स्थिति तो नहीं थी कि इस साल विवाह किया जाय, परंतु तुम्हारी वृद्धावस्था देखकर उन्होंने सोचा कि इसी साल विवाह हो जाय तो तुम भी लड़केके विवाहका लाभ उठा लो। इसीसे तुम्हारे सम्बन्धीने, जितने भी हो सकें, रुपये मेरे साथ भेज देनेके लिये कहलवाया है।'

मोती पटेल तो यह बात सुनते ही ठंढा हो गया, परंतु कलेजा कड़ा करके उसने कहा—'बगलके गाँवमें साहूकारके पास जाता हूँ।' सेठपर मोतीका पक्का विश्वास था, इसीसे वह अपने खेत तथा घरकी सारी उपज बिना मोल-तोल किये सेठके यहाँ पहुँचा

देता और वहाँसे जरूरी माल-सामान ले आया करता।

मोती पटेल धरमशी सेठके पास गया। सेठने मोती पटेलके आनेका कारण नहीं पूछा और बातों-ही-बातोंमें कहा—

'पटेल! मैंने तुमसे पहले भी कहा था कि अभीतक तो गत वर्षके बाकी निकलते पाँच सौ रुपये बिना ब्याज तुम्हारे नाम पड़े हैं। उसके बाद तुम जो घीका डिब्बा दे गये थे, उसके बदलेमें चाय, चीनी, गुड़, बिनौले आदि ले गये थे, उनके भी रुपये बाकी ही हैं।'

पटेलने सेठकी बातकी हाँ-में-हाँ मिलाते हुए कहा—'सेठ! तुम्हारे पैसे दूध दुहे देने हैं। परंतु सेठ, इस बच्चेके विवाहका मंगल-काम तो तुम्हींको सँभालना है। अभी तो मुझे केवल दो सौ रुपये ही चाहिये।'

रुपयेका नाम सुनते ही सेठ चमक उठे। अन्तमें हाँ-ना करते-करते रुपये देना सेठने स्वीकार किया। परंतु बड़ी चालाकीसे सेठने कहा—'मैं भी आजकल ज्यादा नगद रुपये घरमें नहीं रखता। अतः दूसरेसे उधार लाकर दूँगा।' यों कहकर सेठने बहीमें खाता डालकर पटेलकी सही भी करवा ली और जरूरी सामानके लिये गाड़ी भेजनेके लिये कहकर दो सौ रुपये दे दिये। शेष पाँच सौ रुपये बारातके पहले दिन देनेका वादा किया। पटेलने हर्षभरे मनसे घर लौटकर दो सौ रुपये पुरोहित महाराजको गिना दिये। अन्तमें रायसंगकी बारात चढ़नेका दिन आया। अमुक जगह मिलनेका संकेत करके बारातको रवाना कर दिया और मोती पटेल दो-एक मुस्तैद आदमियोंको साथ लेकर धरमशी सेठके पास रुपये लाने गया। सेठने लाचारी प्रकट करते हुए कहा—'क्या करूँ पटेल! मैंने तो अपने विनोदको रुपये

लानेके लिये भेजा था, पर आजकल फार्म कमजोर हो जानेके कारण विनोदको खाली हाथ लौटना पड़ा।'

यह सुनते ही बेचारे पटेलके तो होश-हवाश ही हवा हो गये। फिर, साथ आये हुए लोगोंको संग लेकर मोती पटेल, जहाँ बारातकी बैलगाड़ियोंके साथ मिलनेका निश्चय किया था, उस ओर चल दिया। परंतु उन लोगोंके वहाँ पहुँचनेके कुछ ही देर पहले बारातकी गाड़ियाँ आनन्दके गीत गाती हुई आगे चली गयी थीं। बगलमें पशु चरानेवाले एक गँड़रियेने यह बात बतायी और अपने सहज स्वभाववश चिलम पीकर आगे जानेको कहा। इन लोगोंने उसकी बात मान ली।

गँड़रियेने पटेलको उदास देखकर मानवसुलभ जिज्ञासासे पूछा—'क्यों बापजी! शरीर कुछ गड़बड़ है क्या?' ऐसे सहानुभूतिके शब्द सुनकर मोती पटेल रो पड़ा और भगवान्से मौत माँगने लगा। बार-बार पूछने-ताछनेपर जब गँड़रियेको सब बातोंका पता लगा तब वह कहने लगा—'चिन्ता मत करो, कितने रुपये चाहिये?'

पहले तो यह बात माननेमें ही नहीं आयी। जान-न-पहचान, न कोई जात-बिरादरीका सम्बन्ध; इसपर भी इस मालदारने कितनी ममता और प्रेम दिखलाया। मोती पटेल तो अपनी पगड़ी उस गँड़रियेके चरणोंमें रखने लगा। यह देखकर गँड़रिया एकदम उठ खड़ा हुआ और पटेलसे बोला—'मैंने अपनी लड़की रुड़कीके गौनेके लिये रुपये इकट्ठे कर रखे हैं। मैं तो गौना कुछ दिन बाद करूँगा, तब भी चलेगा। परंतु तुम्हारे तो अब हाथकी बात ही जो नहीं रही है। तुम्हारा काम तो होगा ही बापजी! मैं तुमको नगद तीन सौ रुपयेतक दे सकूँगा! ज्यादा चाहिये तो चाँदीकी करधनी

निकाल दूँ। सहज ही इसके पचास रुपये तो मिल ही जायँगे।'

एक अनजान गँड़रियेकी यह बात सुनकर मोती पटेल गद्गद हो गया और उसे प्रेमसे गले लगाकर बोला—'आजसे तू मेरा भाई है। पर मैं तेरे रुपये तभी लूँगा जब तू मेरे साथ बारातमें चलना स्वीकार करेगा।'

बड़ी कठिनतासे और बहुत आनाकानी करनेके बाद उसने मोती पटेलके साथ बारातमें जाना मंजूर किया। उसने अपने ढोरोंकी व्यवस्था की और बारातकी गाड़ियोंसे जा मिलनेके लिये सब हर्षभरे हृदयसे दौड़ते हुए चल दिये। रायसंगका विवाह धूमधामसे करके सब अपने गाँव लौट आये।

शामला गँड़रियेने जब मोती पटेलसे जानेकी इजाजत माँगी, तब मोती पटेलने सारे गाँवके लोगोंको इकट्ठा करके शामलाकी प्रशंसा की और उसीकी सहायतासे वह अपने लड़केका विवाह धूमधामसे कर सका था, यह बताया और कहा कि 'यह शामला तो अब मेरा भाई है और मेरी जमीनमें ठीक आधी जमीन मैं इसे देना चाहता हूँ।'

सोनेके टुकड़े-जैसी जमीन देनेकी पटेलकी उदारताके लिये गाँवके लोग कुछ कहते, इसके पहले ही पटेलका लड़का रायसंग बोल उठा—'देखो शामला बापू! अब तुम्हें कहीं जाना नहीं है। हम तुम्हें खेती करना सिखा देंगे!'

अन्तमें इन लोगोंके प्रेमवश शामलाने इधर-उधर भटकनेका विचार छोड़कर जमीन लेना स्वीकार कर लिया। आज मोती पटेल और शामला गँड़रिया जीवित नहीं हैं, पर उनके लड़के माँ-जाये भाईकी तरह प्रेमसे रहते हैं। (अखण्ड आनन्द)

—मनुभाई रजपूत

सरदारजीकी पवित्र मानवता

मैं छिंदवाड़ा (म० प्र०)-का निवासी हूँ। यहाँ अपने माता-पिता और भाइयोंके साथ रहता हूँ। मुझे केवल इस घटनाका वर्णन करना है, इसलिये ज्यादा परिचय नहीं दे रहा हूँ।

मैं अपने दो छोटे भाइयोंको प्रायः साइकिलपर घुमाने ले जाया करता हूँ। सदाकी तरह आज भी उन्हें घुमाने ले गया। दोनोंमेंसे बड़ेका नाम है राघव और छोटेका है ललित। छोटा बहुत ही चंचल वृत्तिका है। राघवको मैंने पीछे बैठाया और ललितको आगे डंडेपर। दो-तीन मील जानेके बाद उन्होंने लौटनेकी इच्छा प्रकट की। मैं वापस हो लिया। दोनोंने अपनी जगह बदल ली। छोटा भाई पीछे बैठ गया और बड़ा आ गया डंडेपर। यह जगह क्यों बदली गयी थी? केवल विधाताके विधानको पूर्ण करनेके लिये ही। साइकिल पहाड़ी सड़ककी लम्बी ढालपर दौड़ रही थी। शामके सातका समय था। अचानक सामने एक ट्रक आ गयी। उसकी बत्तीसे मेरी आँखें चौंधिया गयीं। सड़कके बगलमें काफी नीचे जंगल था। इसी समय डंडेपर बैठे हुए राघवका पैर अगले पहियेमें फँस गया। साइकिल झटकेसे खड़ी हुई और फिसल गयी। मैंने उन दोनोंके हाथ पकड़ लिये थे; अतः हम तीनों तो सड़कपर ही गिरे; किंतु साइकिल उस घने जंगलमें गिर गयी। रातके अँधेरेमें कुछ भी नजर नहीं आता था। ट्रक रुकी नहीं, वह तेजीसे चली गयी। कई और लोग भी निकल गये; परंतु किसीने राघवकी आवाजको नहीं सुना।

कुछ समय पश्चात् वहाँसे एक सरदारजी गुजरे, जो शहरकी ओर जा रहे थे। वे हमारे पास रुके। उन्होंने राघवको रोते देखकर उसका कारण पूछा। मैंने उन्हें सारी घटना सुना दी, परंतु राघवके लगी चोटके विषयमें कुछ भी नहीं कह सका; क्योंकि उसके रोनेका मैंने यही अर्थ लगाया था कि वह डर गया होगा। मैंने कल्पना भी न की थी कि राघवको इतनी गहरी चोट लगी होगी। सरदारजीने उसकी रोनेकी आवाज सुनकर ही यह अंदाज लगा लिया कि इसे गहरी चोट लगी है। उन्होंने जैसे ही उसके पैरपर टार्चकी रोशनी की वैसे ही वह दृश्य देखकर मेरी आँखोंपर अन्धकार छा गया और मेरा सिर चकराने लगा। उसके पैरसे एकदम खून निकलता ही जा रहा था। जैसे-तैसे मैंने अपने-आपको सँभाला। सरदारजीने कहा—

'क्यों भाई, रूमाल है?'

'मैंने कहा—नहीं।'

रूमाल उनके पास भी नहीं था। उन्होंने बिना कुछ कहे ही अँधेरेमें ही उसके पैरमें एक लम्बी-सी पट्टी बाँध दी। फिर उन्होंने कहा—'तुम इसे जल्दी ही अस्पताल ले जाओ।' मैंने कहा—'साइकिल तो नीचे खड्डेमें गिर गयी।'

उन्होंने अपनी साइकिल मुझे दे दी और कहा—'तुम इसे अकेले ही लेकर अस्पताल जाओ। छोटे (ललित)-को मैं लेकर आता हूँ।' मैंने जल्दी और घबराहटमें ललितको उनके पास ही छोड़ दिया और राघवको लेकर मैं अस्पताल पहुँचा। उसे पट्टी बाँधी गयी और मैंने जब वहाँ कुछ लोगोंको यह घटना सुना दी, तब उन्होंने कहा— 'तुमने यह बहुत बड़ी गलती की

लड़केको अकेले छोड़कर। वह कोई लड़केको गायब करनेवाला है और इस बच्चेको भी अवश्य गायब कर देगा।'

मेरा मन भी सशंकित हो उठा। मैं सोचने लगा—'सरदारजीने इसीलिये मुझे साइकिल दी है कि मैं जल्दी-से-जल्दी उनके रास्तेसे दूर हट सकूँ।'

परंतु जब मैं घर पहुँचा, तब मुझे अपने ऊपर, अपने बुरे विचारोंपर बहुत ही लज्जाका अनुभव हुआ; क्योंकि ललित तो घरमें सुखकी नींद सो रहा था। जब उनकी बाँधी हुई पट्टीको मैंने ध्यानसे देखा, तब मालूम हुआ वह उनकी पगड़ीसे फाड़ी हुई पट्टी थी। दूसरे दिन सबेरे जब मैंने बाहरका दरवाजा खोला, तब साइकिलको भी सुरक्षित रखा पाया। इस आदर्श मानवताका ऐसे कलियुगमें दर्शन करके मैं कृतार्थ हो गया। मेरी आँखोंसे आनन्दाश्रु बह चले।

जल्दी-जल्दीमें उनका नाम नहीं पूछ सका था और बहुत ढूँढ़नेके पश्चात् भी उन्हें न पा सका। मैंने उनकी साइकिल तो उनके दोस्त आये थे, उनको दे दी। वे स्वयं नहीं आये।

इस घटनाको सुनानेका तात्पर्य यही है कि आज भी मनुष्यमें दूसरेके स्वार्थको अपना स्वार्थ समझनेकी इतनी पवित्र मानवता कुछ लोगोंमें अब भी पूर्णरूपसे जाग्रत् है। और ये अनजान सरदारजी ऐसी मानवताके प्रतीक हैं। यदि वे एक बार फिर मिल जायँ!

—अशोक दूबे छिंदवाड़ा

व्यापारीकी ईमानदारी

कुछ वर्षों पहलेकी घटना है। कच्छ माँडवीमें एक व्यापारी रहते थे। 'ईमानदारी हमारा मुद्रालेख है' ये शब्द उन्होंने केवल तख्तीपर नहीं खुदवा रखे थे, वरं उनके हृदयमें अंकित थे। माँडवीभरमें उनकी सचाईकी प्रसिद्धि थी। उनके कपड़ेकी दूकान थी। एक बार उन्होंने जहाजी मार्गद्वारा जामनगरसे रेशमी साड़ियाँ मँगवायीं। जहाज पहुँच गया, पर रसीद (बिल्टी) अभी नहीं पहुँची। साड़ियोंके ग्राहक आ जानेके कारण इन्हें साड़ियोंकी जरूरत हो गयी। इन्होंने अपने मुनीमके हाथ कस्टम अफसरपर पत्र लिख दिया। सरकारी अधिकारियोंपर भी इनके सत्य आचरणकी छाप थी, अतः बिना ही रसीदके माल छोड़ दिया गया। उस समय बाहरसे आनेवाले मालपर जकात लगती थी। रेशमी कपड़ेपर जकात ज्यादा थी, सूतीपर कम। इसलिये जकातके पैसे भरते समय मुनीमने पैसे बचानेकी नीयतसे रेशमीके बदले सूती साड़ी लिखवा दी और पैसे भरकर वह साड़ियाँ दूकानपर ले आया। मालिकने जकातके पैसे कम लगे देखकर बात पूछी। मुनीमने कहा—'मैंने पैसे बचानेके लिये सूती साड़ी लिखवा दी थी।' इसको सुनकर मालिक खुश तो हुए ही नहीं, उलटे नाराज होकर बोले कि 'अब आगेसे ऐसी बेईमानी करोगे तो तुमको दूकानसे निकाल दिया जायगा। पैसोंकी अपेक्षा अपनी सचाई तथा इज्जतका मूल्य बहुत अधिक है।' मुनीमने क्षमा माँगी। मालिक जकातकी रसीद लेकर तुरंत जकात अफसरके पास गये और सारी बातें समझायीं। सूती कपड़ेसे रेशमीकी जकात चौगुनी थी। उन्होंने पूरी जकात भर दी। अफसर इनकी ऐसी ईमानदारी देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और मन-ही-मन कहने लगे—'काश! भारतके सभी व्यापारी ऐसे ही ईमानदार होते तो!' (अखण्ड आनन्द)

—जैनधर्मी

ईमानदारी और सद्व्यवहारका बदला

वृजमोहन और मदनलाल हिस्सेदारीमें व्यापार करते थे। दोनोंमें बहुत प्रेम था। वृजमोहन व्यापारी स्वभावके बहुत अच्छे पुरुष थे, पर थे बड़े सावधान। अपना एक पैसा छोड़ते नहीं और दूसरेका एक अधेला भी लेना नहीं चाहते। काम-काज भी अधिक वही देखते। मदनलालके प्रति उनकी बड़ी प्रीति थी। मदनलाल काम-काजमें कम समय लगाकर अधिक समय देशके काममें लगाते। तब भी वृजमोहनजी उन्हें कभी कुछ कहते नहीं, वरं उनका विशेष आदर करते। एक बार बाजारमें किसी कारणवश बड़ी गड़बड़ी आ गयी। कई अच्छे-अच्छे फर्म फेल हो गये। वृजमोहन-मदनलालको भी इस व्यापारिक संकटमें काफी तकलीफ सहनी पड़ी। उनके लाखों रुपये दूसरे व्यापारियोंमें अटक गये। इनमें एक व्यापारी ऐसे थे जो पहले बहुत सम्पन्न थे, पर अकस्मात् उनको बहुत बड़ा नुकसान हो गया था। इनमें वृजमोहन-मदनलालकी बहुत रकम बाकी थी। ये उसे दे नहीं पाये। वृजमोहनजीको यह संदेह था कि 'इन्होंने रुपये छिपा रखे हैं और इनकी नीयत बिगड़ गयी है, इसलिये ये नहीं दे रहे हैं।' पर बात वास्तवमें ऐसी नहीं थी। उनके पास कुछ भी नहीं बचा था। वे अपने घरकी स्त्रियोंका सारा गहना भी दे चुके थे। इस बातका मदनलालको पूरा पता लग गया था। मदनलालने वृजमोहनको सब बातें बतायीं भी; पर उनको जो सूचना मिली

थी, उसपर उन्हें अधिक विश्वास था और उस सूचनाके अनुसार उक्त व्यापारीके यहाँ बहुत-सा जेवर था। अतः वृजमोहनने कोर्टमें नालिश कर दी। उक्त व्यापारी सच्चे थे, अतः वे कोर्टमें हाजिर नहीं हुए। कोई झूठा जवाब नहीं दिया। उनपर एकतरफा डिग्री हो गयी। वृजमोहनजीने चुपके-चुपके डिग्री जारी करवाकर उक्त व्यापारीके घरपर कुर्की भेजनेकी व्यवस्था की।

इसका पता मदनलालको लगा, तब मदनलालने फिर पता लगाया। वे उस व्यापारीसे मिले। उसने सच्ची बात बतायी कि उसके घरमें अपना जेवर बिलकुल नहीं है। करीब एक लाख रुपयेका उनकी एक विवाहिता लड़कीका जेवर है—जो उसके यहाँ ससुरालवालोंमें परस्पर घरू झगड़ा हो जानेके कारण उनके यहाँ रखा हुआ है। पता लगानेपर यह बात सत्य निकली। तब मदनलालने आकर फिर वृजमोहनजीसे कहा कि 'जेवर उनका नहीं है। आप कुर्की न भेजें। यदि आप कुर्की भेजेंगे तो मैं पहले ही उनको सूचना दे दूँगा कि वे अपनी लड़कीका गहना घरसे हटा दें।' वृजमोहनको कुछ क्षोभ तो हुआ, पर वे मान गये। कोर्ट आदमी भेजा, पर तबतक कुर्की जा चुकी थी। यह समाचार मिलते ही मदनलालने उक्त व्यापारीको फोन कर दिया कि 'आपके यहाँ हमारी कुर्की आनेवाली है। जेवर हटा दो। विश्वास हो तो मेरे पास भेज दो।' कुर्कीवालोंके पहुँचनेसे पहले ही सारा जेवर मदनलालके पास आ गया। कुर्कीवालोंको कुछ भी नहीं मिला। वे खाली हाथ लौट गये। तबतक कोर्टसे कुर्कीका आर्डर भी वापस करा दिया गया। उस व्यापारीका गहना उसकी लड़कीको सौंप दिया गया।

श्रीवृजमोहन और मदनलालके इस व्यवहारका उक्त व्यापारीपर बड़ा असर हुआ। वह रातको आया और उसने अपनी सारी हालत सच-सच बतलाकर बड़ी कृतज्ञता प्रकट की और देशकी जमीन तथा मकानके पट्टे देनेको कहा। वृजमोहन और मदनलाल दोनोंने कहा कि 'हम आपके बाप-दादेके बनाये हुए और आपके परिवारके रहनेके मकानको नहीं लेना चाहते। जब रुपये हाथमें हों तब दे दीजियेगा।'

उनको उक्त व्यापारीकी सचाई तथा ईमानदारीपर विश्वास हो गया और उसकी वर्तमान स्थितिको देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ—कुछ ही महीनों पहले जो बड़ा सम्पन्न था, वह आज कितना विपन्न है! उन वृजमोहन-मदनलालने उसे कारोबार करनेके लिये एक बड़ी रकम उधार (मनमें सहायता समझकर ही) दी। उसका कारोबार चला और कहना नहीं होगा कि तीन ही वर्षके अंदर उसका सारा ऋण चुक गया। इतना ही नहीं, वृजमोहन-मदनलालको उसने ब्याजसमेत उनका नया-पुराना ऋण तो चुकाया ही, साथ ही अपने व्यापारमें रुपये लगानेके नाते उनका अमुक हिस्सा उन्हें उस समय बिना बताये रख दिया था, उस हिस्सेके भी लगभग साठ हजार रुपये उनके अनेक मना करनेपर भी उनको दिये। यों भगवान्ने ईमानदारी, सचाई और सद्व्यवहार-उपकारका विलक्षण बदला दिया।

—हजारीमल गुप्त

तुम्हारा बच्चा क्या मेरा बच्चा नहीं ?

इसका नाम था अमराजी। रस्सीके सहारे आँखपर चढ़ाया हुआ चश्मा, बुढ़ापेकी प्रतीक-जैसी सारे शरीरपर पड़ी हुई झुर्रियाँ। बड़ी मुश्किलसे चल पाता था; पर पता नहीं कोई ऐसा उत्साह इसके हृदयमें बहता रहता था जिससे वह मुसकराता हुआ डाक बाँटा करता।

अमराजीके चार वर्षका बच्चा था। इसकी माँ तो इसे छोटी ही उम्रमें छोड़कर बड़े घर चली गयी थी। यह नन्हा-सा बच्चा सारे मुहल्लोंमें हरेकको अपनी तोतली भाषासे मोहित किये लेता था। जब अमराजी डाक लेकर आता, तब यह बच्चा बीच रास्तेमें राह देखता बैठा रहता।

अमराजीका यह प्यारा बच्चा बीमारीमें फँस गया। दो-तीन दिन तो अमराजीने ईश्वरके भरोसे निकाल दिये, पर जब बीमारी बढ़ी तब उसने गाँवके डॉक्टरको बुलाया। बच्चेको देखकर डॉक्टरने कहा— 'भाई! तुम्हारे बच्चेको मियादी बुखार है और यदि इसको जल्दी न रोका गया तो बच्चेका जीवन जोखिममें पड़ जाना सम्भव है।'

डॉक्टरको फीस देते समय अमराजीके हाथ काँप रहे थे। डॉक्टरके जानेके बाद अमराजी घबरा गया। दवाकी फेहरिस्त देखकर तो अमराजीके मुँहसे चीख निकल पड़ी—पैसे कहाँसे लगाऊँगा? मेरे-जैसे डाकियेको पैसे देगा भी कौन? पर मुझ बूढ़ेकी लकड़ी-जैसे इस बच्चेकी दवा भी तो करनी है।

अड़ोसी-पड़ोसियोंको बच्चेकी सँभाल देकर अमराजी दो-तीन मील डाक लेने जाता, पर वह जल्दी ही लौट आता। एक दिन इसके हाथमें चालीस रुपयेका एक मनीआर्डर एक विधवा बुढ़ियाके नाम आया। बुढ़िया भी गरीब थी। यह भी इन रुपयोंकी कबसे बाट देख रही थी। इधर अमराजीके मनमें आया कि 'इन

रुपयोंसे मैं दवा ले आऊँ तो मेरा बच्चा बच जाय। बुढ़ियाको क्या पता लगेगा?' पर जीवनमें जिसने कभी पाप नहीं किया, उस अमराजीका मन पीछे पड़ रहा था—हरामके पैसे उसे नहीं पचेंगे। विधवा बुढ़ियाकी हाय उसके आधारको चबा जायगी।

उस दिन रातको उसे नींद नहीं आयी। आखिर सत्यकी जय हुई। दूसरे दिन सबेरे ही अमराजी बुढ़ियाके पास गया—'लो माँ—तुम्हारा मनीआर्डर है चालीस रुपयेका।' डाकियेकी आवाज सुनते ही बुढ़िया रसोईमेंसे निकलकर आँखें मसलती बाहर निकली।

'अरे भैया! यह मनीआर्डर इतनी देरसे कैसे आया? मेरे लड़केकी तो एक सप्ताह पहले ही चिट्ठी आयी थी कि मैं चालीस रुपयेका मनीआर्डर भेज रहा हूँ, मिलनेपर पहुँच लिखना।' बुढ़ियाने देर होनेका कारण पूछा।

और अमराजीकी आँखोंसे दो आँसू निकलकर ढुलक पड़े। बुढ़ियाने तुरंत ऊपरकी ओर देखा—'अरे, तुम तो जैसे रो रहे हो, ऐसा लगता है। तुम अपने मनकी इस बेचैनीका कुछ कारण बताओ तो पता लगे।'

अमराजीने आपबीती सब सुनायी और दोनों अँगुलियोंसे अपने आँसू पोंछ लिये—'मुझे पता होता तो तुम्हें यहाँतक आने ही न देती। क्या तुम्हारा बच्चा मेरा बच्चा नहीं है? जाओ ये रुपये ले जाओ और बच्चेकी अच्छी तरह दवा कराओ। तुमको प्रभु जब दे तो लौटा देना।' बुढ़ियाने कहा।

अमराजी तो इतना दब गया था कि उसके मुखसे आभारका भी एक अक्षर नहीं निकल पाया। और बुढ़िया, मानो उसने कोई सुकृत किया हो, इस भावसे डाकियेकी तरफ देखती रह गयी।

(अखण्ड आनन्द)

—बाबूभाई रेवाशंकर पंड्या

दुष्कृत्यका हाथोंहाथ फल

११ जुलाई १९६२ को मैं बम्बई-मद्रास मेलसे जा रहा था। कुर्दूवाड़ी स्टेशनसे पंढरपुर जानेके लिये छोटी रेलवे-लाइन है। प्रतिवर्ष आषाढ़ी एकादशीपर पंढरपुरमें भगवान् श्रीकृष्ण—जिन्हें वहाँ श्रीपण्ढरीनाथ कहते हैं—का मेला लगता है। कुर्दूवाड़ीके समीप रहनेवाले कुछ भक्त यात्री रेलवे-लाइनके बगलसे जानेवाले छोटे-से पैदल मार्गसे जा रहे थे। मेरे डिब्बेमें तीन फौजी युवक थे। इनमेंसे एक डिब्बेका दरवाजा खोले खड़ा था और बगलके पैदल रास्तेसे जानेवाले यात्रियोंको पैर बाहर निकाल-निकालकर मार रहा था और यों बेचारे निरीह यात्रियोंको लात मार-मारकर हँस रहा था। हमलोगोंने उसे बहुत समझाया कि 'ये सब बेचारे पंढरपुरकी यात्राको जा रहे हैं, निर्दोष हैं, इन्हें लात मारना ठीक नहीं है। तुम इन निरपराध नर-नारियोंको क्यों ठोकर मार रहे हो?' पर उसने किसीकी बात नहीं सुनी। एक किसान-स्त्री सिरपर टोकरी और टोकरीमें बच्चेको लिये उसी रास्तेसे जा रही थी। इसने देखते ही उसको भी लातसे मार दिया। लात लगते ही वह बेचारी गिर पड़ी और उसीके साथ टोकरी तथा टोकरीका बच्चा भी नीचे गिर पड़ा। यह प्रसंग हमने आँखों देखा, हमें बड़ा दुःख हुआ।

गाड़ी बड़ी तेजीसे जा रही थी। थोड़ी ही देरमें इंजिनमें पानी भरनेवाली सूँड़का खंभा आ गया। युवक पैर बाहर निकाले हुए

था। उसके पैरपर खम्भेकी अकस्मात् बड़े जोरकी चोट लगी। और वह नीचे रेलवे-लाइनपर गिर पड़ा। गिरते ही उसकी टाँगके दो टुकड़े हो गये। यह भयानक दृश्य भी हमने देखा। हमें बड़ा दुःख हुआ।

वह समझानेपर मान गया होता तो यह दुर्घटना क्यों होती? हमें साथ ही यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि पापकर्मका फल कुछ ही क्षणोंमें कैसे मिल गया। मनुष्य यह सब देखकर भी कुछ नहीं सीखता, यही दुःखकी बात है।

—दत्ता दिगम्बर कुलकर्णी

सतीका साहस

पश्चिम पंजाबके जिला डेरागाजीखाँमें कोटकरानी नामकी एक बस्ती है। खेमीबाईका जन्म उसी गाँवमें हुआ। उसी धरतीपर वह खेली और उसीका अन्न-जल खाते हुए यौवनकी ओर बढ़ने लगी। यौवनसम्पन्न होनेपर उसका विवाह पिताने साथके गाँव, डोनेमें एक अच्छे सच्चरित्र युवक रामचरणके साथ कर दिया। पति-पत्नी दोनों प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे।

एक दिन रामचरण किसी कामसे बाहर गया। खेमीबाई घरमें अकेली थी। उस दिन सायं उसीकी गाय घर न लौटी। चरवाहा गाय चरानेके लिये ले जाता था और शामको वापस गाँवमें छोड़ जाता था। खेमीबाईको चिन्ता हुई कि कहीं गाय खो न गयी हो। इसलिये वह गायका पता लगाने चरवाहेके घरकी ओर चल दी। भगवान् भास्करका रथ आराम करनेके लिये तेजीसे भागा जा रहा था। चरवाहेका घर गाँवसे एक मीलकी दूरीपर था। उसके रास्तेमें एक बहुत भयानक खाई थी। इसमें वर्षाका पानी आकर एकत्र हो जाता। अँधेरेमें तो वह और भी भयंकर हो जाती।

अब खेमीबाई उस खाईके निकट पहुँच चुकी थी। उसे एक मुसलमान गुण्डे करीमने देख लिया। करीमपर कामदेवका भूत सवार हो गया। उसने सोचा, अभी तो इसे जाने देना चाहिये। वापसीपर अपना मनोरथ पूरा करूँगा, क्योंकि तबतक अच्छा खासा अँधेरा हो जायगा? यों भी वह उस समय उसे घेर नहीं सकता था; क्योंकि जितनी देरमें वह उसके पास पहुँचता उतनी

देरमें वह खाई पार कर सकती थी।

खेमीबाई चरवाहेके घर पहुँची। पूछनेपर मालूम हुआ कि चरवाहा गायको कोटकरानीमें ही छोड़ आया है। वह वापस जानेको तैयार हो गयी।

दिनका प्रकाश समाप्त हो रहा था, पर खेमीबाईको तो घर पहुँचना ही था। जब वह लौट रही थी तो पश्चिमकी ओरका अन्तिम लाल मेघ भी समाप्त हो चुका था। रातके अँधेरेने धरतीको अपनी चादरमें लपेट लिया। इधर वह गुण्डा बदमाश उसके आनेकी ताकमें बैठा था कि वह कब खाईमें प्रवेश करे और वह अपनी नीच वासना पूरी करे। अन्तमें बेईमानको पैरोंकी आहट सुनायी दी। वह चौकस हो गया। जब खेमीबाई खाईके ठीक बीचमें पहुँची तो उसके कानोंमें धीमी-सी आवाज सुनायी दी—'ठहर जाओ!'

खेमीबाईने पीछे मुड़कर देखा। क्षणभरमें सब कुछ समझ गयी।

'बेईमान!' वह गरजकर बोली—'अपना हित चाहते हो तो वापस चले जाओ।'

परंतु वासनाके अंधे उस बदमाशपर कोई प्रभाव न हुआ। वह पागलके समान आगे बढ़ने लगा। खेमीबाई चुपचाप खड़ी रही। करीम निकट पहुँचा और उसको वह अपने बाहुपाशमें जकड़ना ही चाहता था कि खेमीबाईके जोरदार मुक्केने उसकी नाक तोड़ दी। करीमको इतने जोरका धक्का लगा कि वह पीछे जा गिरा। एक छोटी-सी चीख भी उसके मुँहसे निकल गयी। उसके हाथ अपनी नाकको मलने लगे।

खेमीबाई आगे बढ़ी। करीम डर गया कि अब पता नहीं यह

क्या करे। इस कारण उसने भागनेका यत्न किया। इस बीचमें खेमीबाईका हाथ करीमके कानपर जा पड़ा। बदमाशने कानोंमें बालियाँ पहन रखी थीं। खेमीने एक बालीको पकड़ लिया किंतु वह इस जोरसे भागा कि बाली उसके कानको फाड़ती हुई खेमीके हाथमें रह गयी। खेमीबाई अपने गाँवमें पहुँच गयी। घर जानेके पूर्व उसने अपनी गायकी खोज की और उसे ढूँढ़कर घर ले आयी।

दूसरे दिन जब रामचरण घर लौटा तब पत्नीने सारा वृत्तान्त उसे कह सुनाया। पतिने मुकद्दमा करनेकी ठानी। सौभाग्यसे थानेदार भी उन्हीं दिनों किसी कामसे उनके गाँवमें आया हुआ था। कोटकरानी छोटा गाँव होनेके कारण उसका अपना कोई थाना या पुलिस-चौकी न थी। रामचरणने थानेदारके पास जाकर रपट लिखवायी। थानेदारने खेमीबाईको बुलवाया और उससे पूछा—'क्या आप उस हरामीको पहचान सकेंगी?'

'जी हाँ, क्यों नहीं?' खेमीबाईने उत्तर दिया—'मैं उसे जरूर पहचान लूँगी।'

तीसरे दिन गाँव तथा आसपासके सभी गुण्डे थानेदारके आदेशसे एकत्र किये गये। सबको एक पंक्तिमें खड़ा करनेके पश्चात् खेमीबाईसे कहा गया कि वह उस बेईमानको ढूँढ़ निकाले। खेमीबाई देखती चली गयी। एक आदमीके सामने जाकर वह रुक गयी। उस पुरुषने सिवा आँखोंके शेष चेहरेको पगड़ीके सिरसे ढक रखा था। खेमीबाईने उसे बाँहसे पकड़कर पंक्तिसे बाहर कर दिया। थानेदारसे उसने कहा—'यही है वह बदमाश!'

आप कैसे कह सकती हैं कि 'यह वही है?' थानेदारने प्रश्न किया—'इसका प्रमाण?'

खेमीबाई विचार करने लगी, पर कुछ ही क्षणके लिये। अब वह जल्दीसे गुण्डेके समीप पहुँची और उसकी नाकको दबाया। नाकके दबाते ही वह पीड़ासे चीख उठा और एकदम पीछे हट गया।

'एक तो यह प्रमाण है' खेमीबाईने थानेदारसे कहा 'क्योंकि इसी जगहपर इसे मुक्का लगा था, जिसके कारण इसे अबतक पीड़ा हो रही है।'

'अच्छा यह तो हुआ।' थानेदारने कहा—'क्या आप इसकी पहचान भी बता सकती हैं?'

'इससे जरा यह पूछिये कि इसके दायें कानकी बाली कहाँ गयी है?' खेमीबाईने थानेदारसे कहा।

जब उससे इस विषयमें सवाल किया गया तो वह बोला—'कुछ दिन पूर्व मैं एक वृक्षके नीचे सो रहा था, तब जोरसे आँधी आयी और वृक्षकी एक बड़ी-सी टहनी मेरे कानसे बालीको काटती हुई निकल गयी।'

'अच्छा तो वह बाली कहाँ है?' अब खेमीबाईकी बारी थी, इसलिये उसने पूछा।

बदमाश चुप रहा। उससे कोई जवाब न बन पड़ा।

उस रात यह बाली मेरे हाथ ही रह गयी थी, खेमीबाईने अपनी जेबसे बाली निकालकर थानेदारके हाथपर रख दी। थानेदारने करीमके दूसरे कानकी बालीसे इसे मिलाया तो दोनों एक-जैसी निकलीं। करीमकी सजा हो गयी।

—धर्मवीर

प्रचण्ड अग्निमें गिलहरीके, चिड़ियोंके तथा चुहियोंके बच्चोंकी जीवित रहनेकी सत्य घटनाएँ

कुछ समय पूर्व राजपूत कॉलेज पिलखुवाके संस्थापक कर्मवीर आर्यसमाजके सुप्रसिद्ध महोपदेशक, महात्मा श्रीलटूरसिंहजी पिलखुवा पधारे थे। उन्होंने मेरे पूछनेपर बहुत-से प्रतिष्ठित पुरुषोंके सामने अपनी आँखों-देखी निम्नलिखित घटनाएँ सुनायीं।

(१) कुछ दिनों पहले मऊ जिला मेरठके बढ़इयोंने लक्कड़-लकड़ियोंको जलाकर उनके कोयले बनानेका निश्चय किया। जमीनमें एक गड्ढा खोदा गया और उसे लक्कड़-लकड़ियोंसे भरकर आग लगा दी गयी। रातभर वे धाँय-धाँय जलते रहे। अगले दिन जब सब लक्कड़ जलकर कोयले हो गये तब उन लोगोंने गड्ढेसे कोयले निकालने शुरू किये। कोयले निकालते-निकालते उन्होंने देखा कि और सब लक्कड़-लकड़ी तो जल गये हैं, परंतु उनमें लकड़ीका एक गट्ठा बिलकुल ही नहीं जला है, वह ज्यों-का-त्यों पड़ा है। यह बात नहीं कि वह अलग पड़ा रह गया हो, वह जलनेवाली लकड़ियोंके बीचमें था। यह देखकर सभीको आश्चर्य हुआ। किसीको कुछ भी कारण समझमें नहीं आया। तब उसे बाहर निकालकर कुल्हाड़ीसे काटकर देखनेका विचार हुआ। तदनुसार उसे बाहर लाकर कुल्हाड़ीसे चीरा गया तो दिखायी दिया कि उस गट्ठेके अंदर छोटे-छोटे गिलहरीके बच्चे जीवित बैठे हैं, उनको न जरा-सी आँच लगी, न जरा भी

उनका बाल-बाँका हुआ। प्रचण्ड अग्निमें उनका इस प्रकार सुरक्षित रहना देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गये। यह आँखों-देखी घटना बरबस यह मनवा देती है कि ईश्वर है और वह जिसको बचाना चाहता है—आश्चर्यजनक रूपसे बचा देता है।

जाको राखै साइयाँ मार सकै नहिं कोय।
बाल न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय॥

(२) दूसरी सत्य घटना हमारे गाँवकी सामने देखी हुई है। गाँवके एक मकानमें ऊपर छप्पर पड़ा था। अकस्मात् पता नहीं, कैसे उस छप्परमें आग लग गयी। सारा छप्पर जलकर भस्म हो गया। देखा जानेपर मालूम हुआ, छप्परका एक कोना बिलकुल नहीं जला। उसके अत्यन्त समीप पहुँचकर भी प्रचण्ड आग उसे न जला पायी। सबको बड़ा कुतूहल हुआ। पास जाकर देखा गया तो दिखायी दिया कि उस कोनेमें छोटे-छोटे चिड़ियाके बच्चे जीवित बैठे हैं। सारा छप्पर जल-भुनकर खाक हो जानेपर भी इन पक्षिशावकोंको तनिक भी आँच नहीं लगी। प्रभुकी इस अद्भुत लीलाको देखकर सभी आश्चर्यमें डूब गये। आग किसीको न जलाये—यह बात किसी प्रकार भी विश्वासयोग्य न होनेपर भी इन आँखों-देखी घटनाओंको सत्य कैसे न माना जाय?

इसके पश्चात् आर्यसमाजके श्रीदिलेरामजी और महाशय रघुबरदयालजीने एवं एक मुसलमान छात्र श्रीअलियास अहमदने आँखों-देखी चुहियोंके बच्चोंकी दो बड़ी विचित्र घटनाएँ आगसे बिलकुल बचनेकी सुनायीं।

प्रभुकी अपार महिमा है।

—भक्त श्रीरामशरणदास, पिलखुवा

लड़ाई नहीं, न्याय

कुछ वर्षों पहलेकी राजस्थानकी घटना है। हरीराम और चाँदमल—दोनों सगे भाई थे। एक जमीनको लेकर आपसमें मतभेद हो गया। दोनोंने एक दिन आपसमें बात की—'भाई! मामला आपसमें तो निपटता नहीं। इससे हमलोग कचहरीमें दरख्वास्त दे दें। अपनी-अपनी बात हाकिमको सुना दें, फिर वह जो फैसला दें, उसीको मान लें।' दोनोंकी राय एक हो गयी। कोर्टमें दरख्वास्त दे दी गयी। दोनोंने परस्पर सलाह करके एक-एक वकील कर लिया और अपनी-अपनी बात वकीलोंको समझा दी। दोनों भाइयोंमें बड़ा मेल था। घरमें साथ ही खाकर परस्पर घरेलू चर्चा करते दोनों साथ ही कचहरीमें आते। दोपहरको खानेका सामान भी दोनों एक साथ लाते, साथ ही खाते। वकीलोंको भी अपनी-अपनी बात साथ ही समझाते। दोनों ही सच बोलते। उनके इस मामलेसे सभी चकित थे। द्वेष-लड़ाईकी तो कल्पना ही नहीं, केवल निपटारा कोर्टसे कराना चाहते थे। हाकिमने उनसे कहा—'आपलोगोंके बीचमें मैं क्या बोलूँ; जहाँ इतना प्रेम है।' उन्होंने कहा—'इसीलिये तो आपके पास निपटाने आये हैं।' हाकिम हैरान थे। आखिर हाकिमने उन दोमेंसे छोटे भाईको पंच बनाना चाहा। अपने ही मामलेमें आप ही पंच। उन्होंने कहा—'हाकिमका हूकुम हमें स्वीकार है।' पंचने पंचकी हैसियतसे दोनोंकी बातें सुनीं और अपने विरुद्ध बड़े भाईके पक्षमें फैसला दे दिया। अजब मामला था।

—विलासराय

व्यापारमें प्रतिष्ठा

स्काटलैंडके एडिनवर्ग नगरके एक कारखानेसे एक भारतीय उद्योगपतिने एक पुरानी पर अच्छी हालतकी बड़ी मींलिग मशीन खरीदी। मशीन बेचनेवाले कारखानेके मालिकने अनुभवी पुरुषोंके अभावके कारण यह शर्त रखी कि वे कारखानेमें बैठी मशीनकी डेलेवरी देंगे। अतः खरीददार अपने इंजीनियरको मशीन खोलनेके समय वहाँ एडिनवर्ग भेज दें, उनके सामने मशीन खोली जाय। जिससे वे भारत ले जाकर मशीनको अच्छी तरह बैठा सकें। उद्योगपतिने यह शर्त स्वीकार की और उन्होंने अपने प्रधान इंजीनियरको एडिनवर्ग भेज दिया।

मशीन इतनी बड़ी थी कि मशीनको खोलकर फिरसे बैठानेकी तालीम लेकर लौटनेमें इंजीनियर साहेबको तीन महीने लग गये। मशीन भी खुली हालतमें भारत पहुँच गयी। उसे कारखानेमें बैठानेका काम शुरू हुआ। आधी-पौनी मशीन बैठी होगी—इतनेमें इंजीनियर साहेबकी स्मृति मन्द पड़ गयी और अनेक प्रयत्न करनेपर भी वे मशीनको ठीक नहीं बैठा सके। वे घबराये। बात मालिकतक पहुँची! दस-पंद्रह हजार खर्च करके इंजीनियर साहेबको तालीम लेने एडिनवर्ग भेजा गया था। इतनेपर भी ऐसी स्थिति हो गयी। इससे मालिकको बड़ा क्षोभ तथा क्रोध हुआ। मशीनसे उत्पन्न होनेवाले मालकी माँग बढ़ गयी थी। इससे ग्राहक भी आतुरतासे राह देखने लगे।

अन्तमें मालिकने तंग आकर एडिनवर्ग कारखानेवालेको सारी हालत लिखी और वहाँसे इंजीनियर भेजनेके लिये नम्रताके

साथ विनय की तथा इसका सारा खर्च देनेका वचन दिया।

एक सप्ताहके बाद ही तार मिला कि दो इंजीनियर चल पड़े हैं और शीघ्र ही पहुँचकर मशीन चालू कर देंगे। उनके पहुँचनेपर बम्बईके एक खर्चीले होटलमें दोनोंके ठरहनेकी व्यवस्था की गयी। मालिक उनको कारखानेपर ले गये और मशीन बैठानेका काम प्रारम्भ हुआ। जरा भी समय न खोकर दोनोंने बड़ी मेहनत की और आठ ही दिनोंमें मशीन चालू करके वे अपने देशको लौट गये। जाते समय उद्योगपतिने उनका आभार माना और खर्चका पूरा बिल भेज देनेके लिये अनुरोध किया।

परंतु एक सप्ताह बाद कम्पनीका पत्र आया। उसमें लिखा था—'हमारे इंजीनियरोंकी आपने वहाँ अच्छी तरहकी सार-सँभाल की, इसके लिये हम आपके आभारी हैं। आपके इंजीनियरने जैसे-तैसे मशीन बैठाकर उसे चालू नहीं किया, यह उचित किया; कारण चलती मशीन कहीं टूट जाती तो हमारे कारखानेकी बदनामी होती। आशा है, अब मशीन ठीक चल रही होगी। खर्चके लिये कुछ भी चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है; क्योंकि हमारी मशीनको व्यवस्थित रूपसे चालू कर देनेमें हमारी शोभा और हित दोनों ही समाये हैं। इसपर जो खर्च लगा है, वह सब-का-सब हमारी कम्पनी देगी—यह निश्चय हो चुका है। इसके साथ आपके द्वारा चुकाये हुए होटलके बिलकी रकमका चेक भेजा जा रहा है, इसे सँभाल लें और भविष्यमें हमारे लायक कुछ भी काम हो तो अवश्य जनावें।'

(अखण्ड आनन्द)

—शान्तिलाल बोले

अन्तरात्माकी आवाज

वर्षों पहलेकी बात है। सौराष्ट्रके एक छोटेसे गाँवमें हमारे पड़ोसमें एक ब्राह्मण सद्‌गृहस्थ रहते थे। वे पोरबंदर-गोशालाके लगान-वसूलीका काम करते थे। इसलिये उन्हें कई बार इधर-उधर बाहर जाना पड़ता था।

एक बार वे कलकत्ते जा रहे थे। रास्तेमें दिल्ली-स्टेशनपर उतरते समय उनकी जेब कट गयी। इस बातको लगभग दस वर्ष बीत चुके। उनको इस घटनाकी याद भी नहीं रही। इसी बीच एक दिन एक डाकिया तीस रुपयेका मनीआर्डर लेकर इनके घर पहुँचा। कहींसे मनीआर्डर आनेकी कल्पना ही नहीं थी। अतः इन्होंने समझा कि डाकियेकी भूल हुई होगी। पर जब इन्होंने फार्म लेकर उसकी कूपनपर लिखी बातें पढ़ीं, तब तो ये एकदम आश्चर्यमें डूब गये। उसमें लिखा था—

'बड़ी असहनीय परिस्थितियोंके कारण आपका पाकेट मेरे हाथ लगा था। उसे आज लगभग दस वर्ष हो चुके हैं। बहुत समयसे मेरी आत्माकी गहराईसे आवाज आ रही थी और मेरे दिलमें सदा शूल-सी चुभती रहती थी। आज उस पाकेटमें निकले हुए बीस रुपयोंके साथ दस रुपये और मिलाकर कुल तीस रुपये आपकी सेवामें भेजकर मैं आपके ऋणसे मुक्त होता हूँ (आपका पता मुझे पाकेटमें रखे एक कागजपर लिखा मिला था)।'

अन्तरात्मासे सदा ही आवाज तो आया करती है, फिर चाहे मनुष्य उसे सुने या न सुने। (अखण्ड आनन्द)

—जे०जे० राजाणी

चायके व्यापारीकी आदर्श व्यापारनिष्ठा

एक बार एक व्यापारीके यहाँसे मैंने चाय खरीदी। चाय अच्छी न होनेके कारण जब मैं वापस देने गया, तब उसने लेनेसे इनकार कर दिया और मेरे साथ अपमानजनक बर्ताव किया। इसके विपरीत एक दूसरा अनुभव भी मुझे हुआ था, उसीको यहाँ लिख रहा हूँ।

उस समय राज्योंके विलीनीकरणसे पहले मैं एक राज्यका अधिकारी था। मुझे बहुत-से गाँवोंमें घूमना पड़ता और बड़े परिमाणमें चाय खरीदनी पड़ती। उस समय एक पैकेटके दाम थे—साढ़े तीन आने।

एक बार मैं सात पैकेट खरीदकर ले गया। मैंने पहला पैकेट खोला, उसमें सदाकी तरह सुगन्ध नहीं थी। हम सुगन्धके लिये यह चाय खरीदते थे। हमारी आदत पड़ गयी थी। दूसरा पैकेट खोला, उसमें भी वही बात। अधिक पैकेट खोलनेकी हिम्मत नहीं हुई। यह दूकानदार भी कहीं उसीका मौसेरा भाई हो और सारे पैकेट हमारे ही सिर मँढ़ जाय।

जिस कम्पनीसे चाय खरीदी थी, उसे फोन करनेपर उत्तर मिला—'आपको इस प्रकार कष्ट हुआ, इसके लिये हमें अन्तःकरणसे खेद है। आप सब पैकेट यहाँ वापस ले आइये।'

समयपर मैं दूकानपर पहुँचा। कम्पनीने पहलेसे ही इंस्पेक्टरको बुला रखा था, मानो कोई बड़ी बारीक जाँच करनी हो।

इंस्पेक्टरसे मैनेजरने कहा—'देखिये, यह अपने ग्राहककी

शिकायत है, इसका क्या करना है।' इंस्पेक्टर कड़ी परीक्षा करके तीसरा डिब्बा खोलने लगा—'अरे-अरे, यह क्या।' मेरे मुँहसे अचरजभरा उद्‌गार निकल पड़ा।

'आप घबरायें नहीं........... खोलने दीजिये .....'

इसके बाद जैसे कोई पाकमेंसे सड़े आम निकालता हो, उसने एकके बाद एक सभी पैकेट खुलवाये। चायकी क्वालिटी खराब थी, यह निश्चय होते ही उसने जो शब्द कहे वह आज भी मेरे कानोंमें गूँज रहे हैं।

'कोई हर्ज नहीं, महाशय! यह सारी जिम्मेवारी हमारी अपनी है। आपको जो बेहद तकलीफ उठानी पड़ी है, इसके लिये हम बड़ी लज्जाका अनुभव कर रहे हैं—आप हमारे ताजे स्टाकमेंसे दूसरे सात पैकेट तो हकके, और आपको तकलीफ हुई इसके बदले एक पैकेट कम्पनीकी तरफसे ले जाइये।'

'परंतु, इन खोले हुए पैकेटोंका आप क्या करेंगे?' मैंने कहा।

'इसको हम रब्बिश—कूड़ेमें डाल देंगे। हमारे मालके बाबत ग्राहकको कोई शिकायत आये तो हमारी प्रतिष्ठाका क्या हाल हो?'

(अखण्ड आनन्द)

—प्रशान्त

बिना माँगे रुपये चुकाये

लगभग चालीस वर्ष पहलेकी बात है। कलकत्तेमें कपड़ेके एक दूकानदारने—पूजाकी बिक्रीकी भीड़में—दस-बारह हजार रुपयोंकी कुछ कपड़ेकी गाँठें एक चलानीवालेको डेलिवर दे दी, पर उसके नाम लिखना भूल गया और इसलिये उसके रुपयोंका भुगतान भी नहीं मँगवाया गया। बात बिलकुल भूलमें पड़ गयी। जिन चलानीवाले व्यापारीको माल भेजा गया था उसका भी उस समय ध्यान नहीं गया। पूजाकी बिक्रीका काम पूरा होनेके बाद जब भीड़ कम हो गयी, तब उस दूकानदारके दस-बारह हजार रुपये घटनेकी बात ध्यानमें आयी। पर उन गाँठोंकी बात उसे एकदम ही विस्मृत हो गयी। बड़ी चिन्ता हुई, पर कुछ उपाय न था। बहुत तलाश की, पर पता नहीं लगा—बेचारा मन मारकर रह गया। उधर चलानीवालेने वे गाँठें जिनको चलान की थी, उनका पहुँचका पत्र मिला तथा रुपये आये। उनके यहाँ सब जमा-खर्च था ही। तब उसे पता लगा कि इन गाँठोंके रुपये दूकानदारने नहीं मँगवाये। लगभग ढाई महीने बीत चुके थे। उसने दूकानदारको कहलवाया कि 'अमुक दिन आपके इतनी गाँठें हमें डेलिवर दी थीं, उनके रुपये नहीं मँगवाये, सो मँगवा लीजिये।' दूकानदार यह समाचार पाकर हर्ष-गद्गद हो गया और स्वयं जाकर रुपये लाया तथा धन्यवाद दिया। चलानीवाले व्यापारीने हठ करके रुपयोंका ब्याज भी दिया। उसने चलानीवाले व्यापारीसे कहा—'भाई साहेब! आपको ये गाँठें दी थीं, यह बात मुझे तो याद ही नहीं थी। आप खबर न देते तो पता ही नहीं

लगता। आपके मनकी इस ईमानदारीको देखकर मुझे बड़ी ही प्रसन्नता हुई है और मैं आपका बड़ा उपकार मानता हूँ।' उस व्यापारीने कहा—'भाई साहेब! आपके रुपये आपको चुकाकर मैंने कौन-सा प्रशंसनीय काम किया है, यह तो देने ही चाहिये थे। न देनेकी मनमें कल्पना भी होती तो बड़ा पाप होता। मेरे पिताजीने मुझे यही सिखाया था कि बेटा! परायी छदामपर भी कभी मन मत चलाना। दूसरेके हकका एक पैसा भी जानकर मार लेना—उसकी जान मारनेके समान है।'

—जमनादास अगरवाला

ईमानदारके लिये तिमादी नहीं

एक डॉक्टरने बतलाया कि (अप्रैल सन् १९४५) एक पचीस-छब्बीस वर्षके मारवाड़ी युवकको हैजा हो गया। उपचार करनेपर एक बार बीमार कुछ ठीक हुआ; पर अकस्मात् रोग फिर बढ़ गया और स्थिति भयानक हो उठी। शूल उत्पन्न हो गया और हाथ-पैर ऐंठने लगे। युवकको लगा कि अब मैं नहीं बचूँगा। उसने तुरंत माता-पिताको बुलाकर कहा कि 'मैं शायद न बचूँ, अतएव जिन लोगोंसे मैंने बिना किसी लिखा-पढ़ीके या केवल हैंडनोटपर रुपये लिये हैं, उनके नाम-पते तथा रकम लिख देता हूँ। ये सब रुपये आप चुका दीजियेगा।' यह होनेके बाद शामको जाकर देखा तो रोगी अच्छा हो गया था।

हिंदूमात्र ही इस बातको जानता है कि 'ऋण रखना पाप है। तिमादी (Law of Limitation)-का कानून बना है। उसके कारण इस लोकमें चाहे न देना पड़े; परंतु परलोकमें तो देना ही पड़ेगा और नरक अनिवार्य होगा।' ईमानदारीमें तिमादी नहीं होती। मारवाड़ी युवकने इस तिमादी कानूनका लाभ उठाना नहीं चाहा, इसीसे आसन्न मृत्युसे उसकी रक्षा हो गयी।

—भारताजिर

भूखा भूख मिटाता है

बस आनेमें अभी दस मिनटकी देर थी। पू० विनोबाजीके भाषणसे प्रभावित हुए हम चार-पाँच मित्र प्रेम, मानवता, करुणा आदि शब्दोंपर चर्चा करनेमें इतने तल्लीन हो रहे थे कि आस-पास क्या हो रहा है, इसका भी कुछ पता नहीं था।

सहसा हृदयको मानो चीर डालेगी—ऐसी करुण आवाज सुनायी दी। हमने चौंककर पीछे देखा। धँसी हुई तेजहीन आँखें, झुर्रियाँ पड़े चेहरेपर बढ़ी दाढ़ी, हड्डियाँ गिनी जा सकें ऐसा दुबला शरीर, देहपर फटे-टूटे चिथड़े डाले लगभग साठ वर्षका एक बूढ़ा हमारी ओर दौड़ा आ रहा था। हो-हल्ला मचाती बालकोंकी टोली उसे हैरान कर रही थी।

'मै पागल नहीं हूँ, चोर नहीं हूँ, भगवान्के नामपर मुझे मारो मत। मैं गरीब हूँ, दुःखी हूँ, दो दिनोंका भूखा हूँ।' करुणाकी चर्चा करते हुए हम उसकी ओर देखते रह गये। 'हाय राम! भगवान्के नामपर इस भूखेको कुछ टुकड़े दो।'

आँसू-भरी इस आहपूर्ण वेदनाको सुननेको कोई तैयार न हुआ। अपने सुखीपनमें रचे-पचे सभ्य समाजके प्रतिष्ठित लोग उसे धमका रहे थे। 'गोल्ड फ्लैक' (सिगरेट) सुलगाते हुए एक भाई बोल उठे—'चला जा! पता नहीं, ऐसे कितने ढोंगी-फरेबी चले आते होंगे। हरामकी हड्डी हो गयी। आगे चल, दुर्गन्ध आ रही है।'

हम चार-पाँच मित्र इकट्ठे करके उस वृद्धको कुछ देनेकी तैयारी कर रहे थे। इतनेमें ही बगलके खोमचेवालेके हृदयमें राग

भूलका पश्चात्ताप

बंगालके अवकाशप्राप्त न्यायाधीश श्रीनीलमाधव वन्द्योपाध्याय जीवनके अन्तिम श्वास ले रहे थे। उनका प्रत्येक श्वास प्रतिक्षण मृत्युके बिछौनेपर मूर्च्छित हो रहा था। उनके घर-कुटुम्बके लोग नीलमाधवजीकी मुमूर्षु दशा देखकर उनसे पूछ रहे थे, 'आपको कुछ कहना हो सो सुखपूर्वक कह दें।'

नीलमाधवने कहा—'आजसे पाँच वर्ष पूर्व मैंने पाँच हजारकी बीमा करायी थी। उस समय डॉक्टरी परीक्षामें मुझे सर्वथा नीरोग बताया गया था; परंतु उसी दरम्यान मेरे मधुमेहका रोग आरम्भ हो गया था। मैं इसे जानता भी न था। इतनेपर भी मैंने बीमाको रद्द नहीं करवाया। इसीका पश्चात्ताप आज मेरे कलेजेको काट रहा है। बंगालके न्यायाधीशके पदपर रहकर मैंने वर्षोंतक अपने कर्तव्यका पालन किया और अन्तमें मेरे-जैसा न्यायाधीश ईमानदारीसे हट गया! इसका इस समय मुझे बहुत बड़ा दुःख हो रहा है। आप बीमाकम्पनीवालोंको बुलाइये, जिससे मैं पालिसी रद्द करवा दूँ और बीमासे मिलनेवाली रकम मेरे उत्तराधिकारियोंको न मिले, इसकी व्यवस्था करवा दूँ। मेरे उत्तराधिकारियोंको ऐसे बेहकके पैसे मिलें, मैं यह नहीं चाहता।'

(अखण्ड आनन्द)

—धैर्यचन्द्र बुद्ध

डॉक्टरकी मानवोचित सहृदयता

कुछ ही समय पहले मैं अपने मामाजीके पास किसी खास कामसे पूना गया था। मेरे मामाजी स्वयं एक डॉक्टर हैं। उन्हींके अस्पतालमें एक प्रसिद्ध डॉक्टर और भी हैं। वे गढ़वाली पण्डित हैं और जाति है डिमरी। ये वस्तुतः बड़े सरल हृदयके सज्जन हैं। डिमरी साहबने छोटी-सी उम्रमें बहुत ज्यादा पढ़ लिया था। एक दिनकी बात है कि वे अस्पतालसे करीब चार बजे बाहर आ रहे थे। फाटकपरसे जैसे ही कार निकली कि सड़कके किनारे दो प्राणी—एक दस-पंद्रह मिनटका बच्चा और एक युवती अचेत लेटी थी। उस स्थानपर खंडहरकी दीवाल होनेसे कुछ दिखायी नहीं देता था। वे फौरन कार रुकवाकर उतर गये और उस स्थानपर गये। युवतीकी शरीर-परीक्षा की, तदनन्तर उसको और बच्चेको भी उठाकर गाड़ीमें रखकर वापस अस्पताल पहुँचे। कुछ चिकित्सा मिलनेपर लड़कीको होश आया। वह उठकर भागने लगी, तब दरवाजेपर डॉक्टर डिमरी खड़े थे। उन्होंने बड़े स्नेहसे उसका नाम वगैरह पूछा। पता चला, वह लड़की घरसे भागी हुई थी। लड़कीसे जब पूछा गया कि 'तुम्हारी शादी हो गयी है तो नकारात्मक उत्तर मिला। डिमरी साहब एक क्षणके लिये काँप-से गये। उन्होंने फिर पूछा कि 'वह लड़का कौन है?' बतानेपर उसकी पूरी तरह खोज की गयी और तबतक उन अनाथोंको अपनी कोठीपर ही रखा, जबतक कि लड़का नहीं मिल गया। जब लड़का मिला तो वह साफ इनकार

तो कर ही गया, उलटा लड़नेको तैयार हो गया। डॉक्टर साहब मुसकराकर इज्जतके साथ उससे पूछ रहे थे कि वह गाली दे बैठा। इसपर मुझे क्रोध आ गया। डॉक्टर साहबने एकदमसे उछलकर उस नीचको बचा लिया। इसके पश्चात् डिमरी साहबने उसे कारसे वापस भिजवा दिया। लड़की अंदर कमरेमें लेटी रो रही थी। डिमरी साहब बड़ी मुश्किलसे मना रहे थे। आखिर डॉक्टर साहबने उसे राम-नामका जप करनेको कहा और खुद भी किया। अचानक शामको एक लड़केके साथ उसके पिताजी आये और काफी देरतक धीरे-धीरे बातें करते रहे। तदनन्तर एक दिन लड़का, उसके पिता, एक पण्डित और दो-चार ख्यातिप्राप्त सज्जन आये और लड़कीसे आर्यसमाजी ढंगसे विवाह करा दिया। डॉक्टर डिमरी साहबने अपनी तरफसे पाँच सौ रुपये नगद और थोड़े-से कपड़े दिये और कहा—'मैं बहिनको दान कर रहा हूँ। इसको किसी प्रकार भी तंग मत करना।' बिदाईके समय खुद भी रो पड़े। उनको रोते देख हम सब भी रो पड़े। स्मरण रहे, डॉक्टर डिमरी साहब ऊँचे खानदानके और यहाँ एक बड़े उच्चपदपर नियुक्त हैं तथा अच्छा वेतन पाते हैं एवं बड़े ही सहृदय हैं। इस प्रकार इन्होंने कई नेक सेवाएँ की हैं। कुछ दिनों पश्चात् एक दिन जब डिमरी साहब अपने दफ्तरके कमरेमें थे, तब वे दोनों आये और डिमरी साहबके पैर छूकर माथेपर धूल लगाने लगे। लड़का तो पैरोंमें लेट जा रहा था और रो रहा था। डिमरी साहबने उठाकर उसे छातीसे लगा लिया और दोनोंको हृदयसे आशीर्वाद दिया।

—तोताराम वर्मा, बी०ए०